चन्दामामा
जनवरी १९८७
Rs2·50

एक नयी ज़बर्दस्त सनसनाहट! सवेरे सवेरे...

पेपरमिंट और पुदीने की ये सनसनाहट तेज़ी से विकसित हो रहे एक ऐसे फ़ार्मूले में है, जो आपके दाँतों को चहकती सफ़ेदी और साँसों को सचमुच ताज़गी देता है.

नया पॉण्ड्स टूथपेस्ट. ये ब्रश करने में एक नयी उमंग जगाए, उसे मज़ेदार बनाए. आपके बच्चे तो इससे और भी बढ़िया तरह से ब्रश करेंगे. नये पॉण्ड्स टूथपेस्ट का एक ट्यूब आज ही ख़रीदिए. और अपनी हर सुबह एक सुहानी सनसनाहट से भर लीजिए.

नया

पॉण्ड्स्

टूथपेस्ट

स्वस्थ दांत और ताज़ी सांसों का सवेरा

BM 9795

लिओ के लाड़ले हीरो
मौज मनाएं सबसे बढ़कर...
देख लो लिओ लेकर!
LEO
ऑटो रायफ़ल
५ से १२ वर्ष तक
बड़ी बंदूक, बड़ा निशाना...
बहादुरी से लड़ते जाना!
कैरी-ऑन शेफ़
५ वर्ष से अधिक
शेफ़ को सही राह दिखाओ
केक के ऊपर केक जमा करो, और विजयी बनो!
ले-एन-एग
७ वर्ष से अधिक
बैटरी से चले. बटन दबाओ, जल्दी-जल्दी
ज़्यादा अंडे पकड़ो!
बीच क्राफ़्ट
२ से ५ वर्ष तक
ज़मीन पर रगड़ो, छोड़ो.
ये चले तो इंजन भी हिले-डुले!
पायलट आप बनें!
डेयर डेविल
२ से ५ वर्ष तक
ज़मीन पर रगड़ो, छोड़ो
और फ़ायर इंजन दौड़ाओ. बहादुरी से
आग बुझाओ!
DAREDEVIL
रेसिंग रोवर
३ वर्ष से अधिक
दो हिस्सों को अलग-अलग खींचो,
जीप में शक्ति भरो, और छोड़ो.
चलो अब दूर-दूर की सैर करो!
फ़ॉल्कन
३ वर्ष से अधिक
पीछे खींचकर छोड़ो. तेज़ी से आगे बढ़े.
नयी-नयी दुनिया में आप उड़ें!
लैण्ड क्रूज़र
३ वर्ष से अधिक
बैटरी से चलने वाली जीप
टकराए, मुड़े, आप मज़े से चले...
जब भी चले, एन्टीना जले!
मोबाइल कार
३ वर्ष से अधिक
जानी-मानी स्पोर्ट्स कारों के नन्हे मॉडल.
सरसराती छूटें, फटाक से भागें!

आओ
अंकल लिओ क्लब के सदस्य बनो!
UNCLE LEO CLUB
Come join the fun!
कोई भी लिओ खिलौना खरीदकर, आप भी अंकल लिओ क्लब के सदस्य बन सकते हैं. जल्दी कीजिए, क्योंकि पहले २५,००० बच्चों के लिए एक साल की सदस्यता बिल्कुल मुफ़्त है!
शूट-आउट-गन
५ वर्ष से अधिक
निशाना लगते ही मज़बूती से चिपके.
आपको साफ़-साफ़ दिखे!
फ़्लाइंग डिस्क
६ वर्ष से अधिक
फ़्लाइंग डिस्क उड़ाओ, चांद सितारों से आगे बढ़ाओ!
मॉज़र पिस्टल
८ वर्ष से अधिक
मशहूर मॉज़र पिस्टल का हूबहू नन्हा रूप!
ऑटो पिस्टल
४ से १० वर्ष तक
गोली चलने की दनादन आवाज़, ऊपर उठाओ,
निशाना लगाओ... दुश्मन को मार गिराओ!
मेल वैन
३ से ९ वर्ष तक
दोस्तों को लिखो चिट्ठी-ख़त.
मेल वैन में पहुंचाओ फटाफट!
बुल्स आय
७ वर्ष से अधिक
निशाना लगाओ, गोली चलाओ.
निशानेबाज़ी के कमाल दिखाओ!
फ़ाइटर जैट
३ वर्ष से अधिक
पीछे खींचकर छोड़ो.
तेज़ी से बढ़े, हर लड़ाई शान से लड़े!
मार्टिनी पोर्श
३ वर्ष से अधिक
बैटरी से चलने वाली स्पोर्ट्स कार.
छूते ही ये घूमे-मुड़े, देखो कैसी सरपट दौड़े!
फ़्लाइंग सॉसर गन
५ वर्ष से अधिक
नन्ही उड़न तश्तरियां उड़ाए, अंतरिक्ष में ले जाए, तुम्हें स्टार वॉर्स हीरो बनाए!
स्लाइड राइड
४ वर्ष से अधिक
बैटरी से चलने वाला रोलर कोस्टर.
तेज़ रफ़्तार... गोल-गोल, ऊपर-नीचे भागती कार!
छुक-छुक ट्रेन
३ वर्ष से अधिक
बैटरी से चलने वाला ट्रेन सेट.
छुक-छुक, भक-भक, यह आई सुपरफ़ास्ट एक्सप्रेस!
LEO
TOYS
बच्चों के सच्चे साथी
LINTAS LEO P1 2032 HI

जनवरी 1987

★

विषय-सूची

एक प्रति : २-५०

वार्षिक चन्दा : ३०-००

चन्दामामा
संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी
यह प्रायः कहा जाता है कि मूर्ख के लिए मौत ही सर्वोत्तम उपाय है। पर मूर्ख इस तथ्य को समझने में असमर्थ होता है और वह न बोलने लायक़ बात भी बोल देता है। उसके साथ रहनेवाले व्यक्ति का दायित्व है कि वह विवेक से काम ले। अगर ऐसा न हुआ तो उसे वैसी ही हानि उठानी पड़ेगी, जैसी "विचारमग्न आदमी" कहानी के ज़मींदार देवसिंह को उठानी पड़ी।
अमर वाणी
दुर्जनेन समं सख्यं, प्रीतिं चापि न कारयेत् ।
उष्णो दहति चांगारः शीतः कृष्णायते करम् ।।
[दुर्जनों के साथ मैत्री एवं घनिष्ठता कभी नहीं करनी चाहिए। जलता हुआ कोयला यदि हाथ को जला देता है तो बुझा हुआ ठंडा कोयला हाथ को काला कर देता है।]
वर्ष : ३९
जनवरी १९८७
अंक : ५
एक प्रति : २-५०
::
वार्षिक चन्दा : ३०-००
CHANDAMAMA PUBLICATION

चेक
से चमके सारे कपड़े

'चन्दामामा' के संवाद

निद्रा के बिना चालीस वर्ष

मनुष्य के जीवित रहने के लिए आहार जितना आवश्यक है, निद्रा भी उतनी ही आवश्यक है। निद्रा के बिना मनुष्य बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकता। पर ऐसा कहा जाता है कि क्यूबा का निवासी टोमस इज़िकवयार्डो चालीस वर्ष तक आँख झपकाये बिना जीवित रहा है। "विश्व के चिकित्सा-इतिहास में आज तक ऐसी आश्चर्यजनक घटना का उल्लेख नहीं हुआ है" यह वक्तव्य क्यूबा के मनोवैज्ञानिक विद्वान पेड्रोगार्षिया का है।

दीर्घायु का रहस्य

ब्रिटेन के १०८ वर्ष के एक वृद्ध ने अपने दीर्घायु जीवन के तीन मुख्य रहस्य बताये हैं। उन्होंने कभी शराब का सेवन नहीं किया, धूम्रपान नहीं किया और इसके अलावा वे सदा किसी न किसी काम में दिल से लगे रहे।

समझदार जानवर

न्यूयार्क के चिड़ियाघर के भूतपूर्व निदेशक डाक्टर नीलुवूलेयर का विचार है कि चिंपाजी, ओरांग, उटांग, हाथी, गोरिल्ला, कुत्ता, घोड़ा, समुद्री-शेर, भालू, बिल्ली इत्यादि जानवरों में न केवल अच्छी स्मरण शक्ति है, बल्कि उनकी ग्रहणशक्ति भी बहुत अच्छी है।

पुराण कथा

जयन्ती

किसी काल में दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ने कैलास-पर्वत पर शिव को आराध्यदेव बनाकर तपस्या आरंभ की। देवताओं ने सोचा कि शुक्राचार्य की तपस्या फलीभूत होने पर उनके लिए हानिकारक हो सकती है। उन्होंने किसी भी उपाय से उनकी तपस्या में विघ्न डालने का निश्चय किया। सब देवता मिलकर इंद्र की पुत्री अनुपम सुन्दरी जयन्ती के पास पहुँचे और बोले, "हम देवताओं के कल्याण के लिए तुम्हारी सहायता माँगने आये हैं।"

"मेरी सहायता? किस रूप में?" जयन्ती ने चकित होकर पूछा।

"तुम वचन दोगी, तभी बतायेंगे।" देवताओं ने कहा।

"देवजनों का कल्याण हो, यह मेरी महान शुभकामना है। मैं आपके लिए क्या करूँ?" जयन्ती ने पूछा।

"यदि तुम देवों के कल्याण को इतना महत्व देती हो तो तुम्हें कैलास-पर्वत पर जाना होगा! वहाँ तपस्या कर रहे शुक्राचार्य की शुश्रूषा करके तुम्हें उनके साथ विवाह करना होगा।" देवता बोले।

जयन्ती समझ गयी कि देवता शुक्राचार्य की तपस्या में विघ्न उपस्थित करना चाहते हैं। जयन्ती किसी तपस्वी के पतन का कारण नहीं बनना चाहती थी। पर, वह देवताओं को वचन दे चुकी थी। वह एक मुनिकन्या का वेश धारण कर कैलास-पर्वत पर पहुँची और शुक्राचार्य की सेवा-शुश्रूषा करने लगी।

कुछ काल बीतने के बाद शुक्राचार्य की तपस्या फलीभूत हुई। शिव ने उन्हें वर प्रदान किये। इसके बाद जयन्ती की सेवा-भक्ति से प्रसन्न होकर शुक्राचार्य ने उससे वर माँगने के लिए कहा।

जयन्ती ने शुक्राचार्य से निवेदन किया, "स्वामी, मैं आपको पति रूप में पाना चाहती हूँ।"

शुक्राचार्य ने प्रसन्नभाव से जयन्ती के आग्रह को स्वीकार किया और उसके साथ विवाह कर लिया।

जयन्ती ने शुक्राचार्य की तपस्या को भी निर्विघ्न समाप्त होने दिया और देवताओं को दिये गये अपने वचन के अनुसार शुक्राचार्य का समर्थन प्राप्त कर उनसे विवाह भी किया।

छोटा संन्यासी

गोदावरी नदी के तट पर शिवस्वामी नाम के एक संन्यासी रहते थे। उनके एक छोटी सी कुटिया थी। वे दिन में एक बार भिक्षा के लिए निकलते और पास के गाँव से जो कुछ मिल जाता, उससे अपनी क्षुधापूर्ति करते। धनपुर नाम के इस गाँव के जो गृहस्थ उनमें श्रद्धा रखते थे, वे क्रम से उनके लिए आहार की व्यवस्था करते थे। शिवस्वामी आहार ग्रहण कर अपनी कुटी को वापस लौट आते थे।

धनपुर के जमींदार ठाकुर जयराज शिवस्वामी का आदर करते थे। वे एक दिन संन्यासी शिवस्वामी की कुटी पर गये और अत्यन्त श्रद्धभाव से निवेदन किया, "स्वामीजी, आप प्रतिदिन भिक्षाटन के लिए गाँव में जाते हैं। मुझे यह अच्छा नहीं लगता है। मैं प्रतिदिन यहीं आपके लिए भोजन भेजा करूँगा। आपको अपनी कुटी छोड़ने की आवश्यकता नहीं है।"

ठाकुर जयराज की बात सुनकर शिवस्वामी हँस पड़े और बोले, "मैं दिन में केवल एकबार भोजन करता हूँ। गाँववालों से प्राप्त भिक्षा से मेरी भूख मिट जाती है। साल में एकबार मुझे नये वस्त्रों की ज़रूरत पड़ती है। चार हाथ की धोती और एक छोटा सा अंगोछा मेरे लिए पूरा होता है। ये वस्त्र भी मुझे गाँववाले दे देते हैं। जो मुझे प्राप्त है, उसमें मैं संतुष्ट रहता हूँ।"

संन्यासी में जमींदार की श्रद्धा और अधिक बढ़ गयी। उन्हें शिवस्वामी की निस्पृह वृत्ति और त्याग-भावना का अनुभव मिला। इसके बाद ज़मींदार ने संन्यासी के चरणों में प्रणाम किया और कुटी से चुपचाप बाहर निकल गये।

ठाकुर जयराज और शिवस्वामी के बीच हुई यह बातचीत उधर से गुज़रनेवाले एक बालक के कानों में पड़ी। उसने जमींदार को संन्यासी के चरणों में प्रणाम करते हुए भी देखा। बालक के मन में संन्यासी के प्रति अपार श्रद्धा-भक्ति जागृत हुई। वह तुरन्त संन्यासी की कुटी में पहुँचा और

दिनेश ठाकुर

सुदास ने शिवस्वामी के चरण छूकर निवेदन किया, "स्वामीजी, मैं भी आपके साथ चलना चाहता हूँ । मुझे आज्ञा दीजिये!"

संन्यासी ने अस्वीकृति में अपना सिर हिलाकर कहा, "बेटा, तुमने इधर कई वर्षों से बड़े प्रेम से मेरी सेवा की है । मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ । तुम्हारी यह भावना भी बड़ी प्रशंसनीय है कि तुम संन्यासियों के सदृश ही मेरे साथ तीर्थाटन करना चाहते हो । तुम्हारी कामना उत्तम है पर इसके लिए अभी समय नहीं आया है । तुम कुछ समय और धैर्य रखो, फिर जैसा उचित होगा, मैं कहूँगा । मैं जमींदार से तुम्हारे बारे में बातचीत करूँगा । वे तुम्हें खेतीबारी के लिए थोड़ी ज़मीन दे देंगे । तुम सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करना ।"

उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया ।

संन्यासी ने बालक को आशीर्वाद दिया और उसका परिचय जानना चाहा । बालक ने कहा, "स्वामीजी, मैं एक अनाथ बालक हूँ । मेरा नाम सुदास है । मैं आपकी शरण में आया हूँ और अब यहीं रहकर आपकी सेवा करना चाहता हूँ ।"

शिवस्वामी ने सुदास को स्वीकार कर लिया । सुदास बड़े श्रद्धाभाव से स्वामीजी की सेवा करने लगा । जैसे-जैसे समय बीतत गया, स्वामीजी के लिए सुदास की भक्तिभावना दृढ़ होती गयी ।

कुछ वर्ष इसी प्रकार व्यतीत होगये । एक दिन शिवस्वामी ने सुदास को बुलाकर कहा, "वत्स सुदास, मैं तीर्थाटन पर जा रहा हूँ । तुम ठीक ढंग से रहना ।"

उस समय सुदास सोलह वर्ष का किशोर था । अपने गुरु के निर्णय से वह बड़ा दुखी हुआ और उदास होकर बोला, "स्वामी गुरु, सांसारिक सुखों के प्रति मेरे मन में कोई मोह नहीं है । यदि आप मुझे अपने साथ नहीं ले जाते हैं तो मैं भी आपकी तरह सीधे सरल भाव से एक समय भोजन कर इस कुटी में रहूँगा और आपकी ही भाँति अपना शेष जीवन बिताऊँगा ।"

सुदास की बात पर संन्यासी शिवस्वामी ने अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की, केवल मुस्करा भर दिया । इसके बाद अगले दिन वे तीर्थाटन पर निकल पड़े ।

संन्यासी शिवस्वामी के चले जाने के बाद सुदास उसी कुटी में रहने लगा । आसपास के

लोग उसे छोटा संन्यासी कहकर पुकारने लगे। संपत्ति के नाम पर सुदास के पास केवल एक धोती, अंगोछा और एक सुराही मात्र थी।

कुछ दिन निकले। एक रात छोटे संन्यासी के अंगोछे को चूहों ने काट दिया। सुबह होने पर सुदास ने देखा कि अंगोछा कई जगह से कटा हुआ है। उस रास्ते से जा रहे धनपुर गाँव के एक गृहस्थ यशपाल को सुदास ने यह समाचार बड़े दुख के साथ सुनाया।

यशपाल ने सुदास को समझाकर कहा, "छोटे संन्यासी, मैं आपको माँगे बिना ही एक नया अंगोछा दे सकता हूँ। पर, इससे आपकी समस्या हल न होगी। चूहे आपके दूसरे अंगोछे को भी काट डालेंगे। मेरा सुझाव है कि आप इस संकट से बचने के लिए एक बिल्ली को पाल लें!"

बिल्ली पालने की बात सुनकर छोटा संन्यासी चौंक उठा और बोला, "मैंने किसी के मुँह से एक कहानी सुनी है—एक संन्यासी ने अपनी लंगोटी को बचाने के लिए एक बिल्ली पाल ली थी। उसके कारण अनेक समस्याएँ पैदा होती गयीं, जिनसे बचने के लिए उन्हें गृहस्थ-जीवन की दल दल में फँसना पड़ा। अगर मैं बिल्ली पालूँगा तो मेरी दशा भी यही हो जायेगी।"

यशपाल सुदास की बात सुनकर हँस पड़ा और बोला, "छोटे स्वामी, यह कहानी तो एकदम मनगढ़न्त है। अगर हम इसे सच्चा मान भी लें तो फिर यह भी मानना होगा कि उस संन्यासी में संयम न रहा होगा। आप तो स्वयं भी संयमी हैं और फिर सर्वस्व-त्यागी शिवस्वामी के पट्ट शिष्य हैं।"
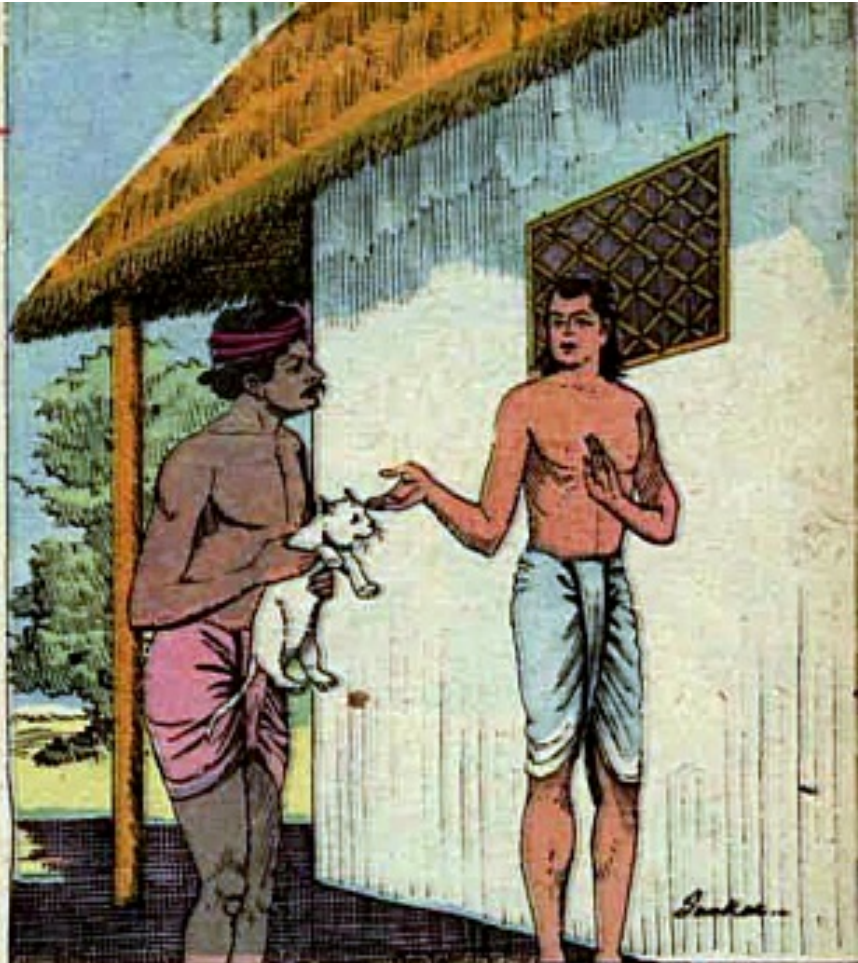
गृहस्थ यशपाल की बात सुनकर सुदास मौन रह गया। अगले दिन यशपाल एक बिल्ली ले आया और उसे छोटे संन्यासी को सौंप दिया।

छोटे संन्यासी सुदास की वह बिल्ली अपना आहार स्वयं जुटाने की स्थिति में न थी। इसलिए वह सारे दिन भूख से बिलबिलाती और म्याऊँ म्याऊँ का शोर मचाती। धनपुर के एक दूसरे गृहस्थ से सुदास ने सारा हाल कह सुनाया। सत्य व्रत नाम के उस ने कहा, "छोटे स्वामी, बिल्ली के भूख से मर जाने पर आपके सिर पर बड़ा पाप लगेगा। आप ठाकुर ज़मींदार के पास जाकर एक गाय माँग लीजिये। वे अवश्य ही आपको एक
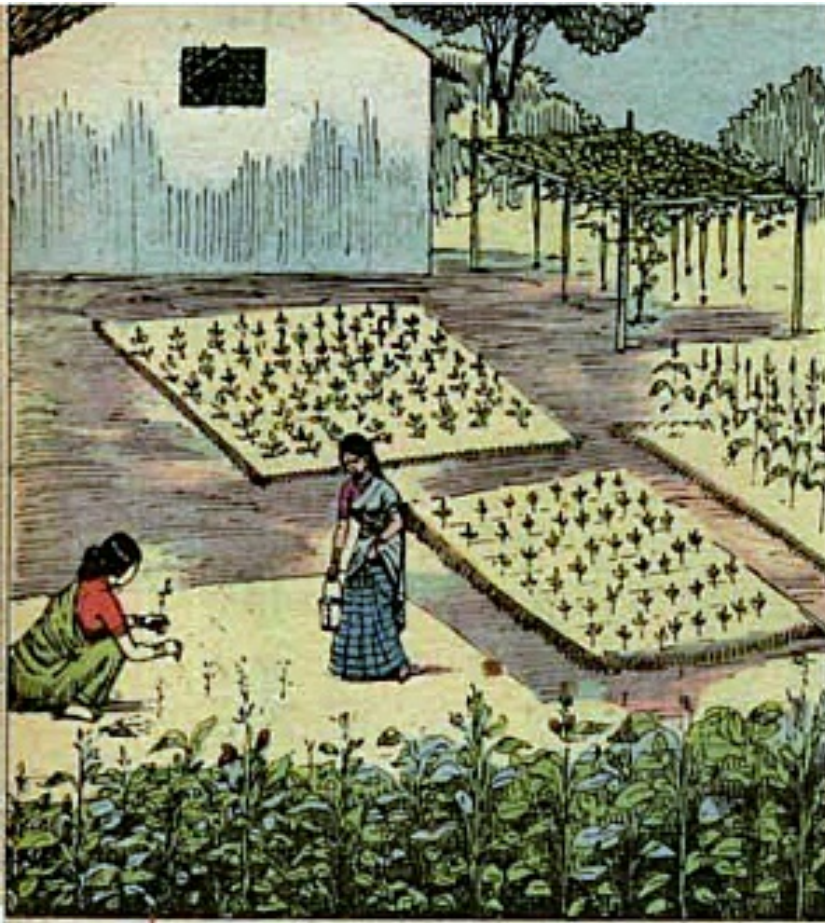
दुधारू गाय दे देंगे। उस गाय के दूध से बिल्ली आराम से पल जायेगी।"

छोटे संन्यासी बने सुदास को सत्यव्रत की यह सलाह बड़ी अच्छी लगी। वह तुरन्त ठाकुर जयराज के पास पहुँचा। सुदास को देखकर ठाकुर ने उसकी अगवानी की। ठाकुर के मन में शिवस्वामी के शिष्य सुदास के प्रति भी आदर और प्रेम था। उन्होंने तत्काल ही सुदास को एक दुधारू गाय दे दी।

इस घटना के एक सप्ताह बाद दामोदर नाम का एक गृहस्थ सुदास की कुटी में आया और बोला, "छोटे स्वामी, यह बात तो सही है कि बिल्ली को पालने के लिए गाय की ज़रूरत है, पर गाय को पालने के लिए भी घास फूस तो चाहिए न! इस कुटी के चारों तरफ़ जो बंज़रभूमि है, वह सब जमींदार ठाकुर की है। अगर आप उनकी अनुमति ले लें तो मैं इसे जोतकर खेती के लायक़ बना दूँगा। खेती से जो फसल होगी, उसे हम आधा-आधा बाँट लेंगे। ऐसी स्थिति में आपको अपने भोजन एवं अन्य आवश्यकताओं के लिए भिक्षांटन की आवश्यकता न पड़ेगी। साथ ही, गाय के लिए चारा भी पयप्ति मात्रा में मिल जायेगा।"

सुदास को दामोदर की यह सलाह बड़ी अच्छी लगी। जब सुदास ने जमींदार से ज़मीन के बारे में कहा तो वे बोले, "छोटे स्वामीजी, कुटी से लेकर नदी-किनारे तक की सारी ज़मीन आप ले लीजिए! उस बंजरभूमि का मुझे क्या करना है?"

ठाकुर ज़मींदार की स्वीकृति पाकर छोटा संन्यासी सुदास फूला न समाया। दामोदर ने उस भूमि में जुताई-सिंचाई करके उसे खेती के लायक़ बना लिया और उसमें धान बो दिया। पैदावार बड़ी अच्छी हुई। उस धान को रखने के लिए गोदाम की ज़रूरत पड़ी। उस कुटी को गिरा दिया गया और वहाँ एक पक्का मकान खड़ा होगया।

छोटा संन्यासी सुदास उस सारी रचना से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। दामोदर की पत्नी सरला और तरुणी बेटी शोभा ने मकान के पिछवाड़े साग-सब्जी और फलों के वृक्ष भी उगा लिये। माँ-बेटी दोनों समय छोटे संन्यासी को अनेक पक्वान्नयुक्त खाना बनाकर खिलातीं।

दूसरे वर्ष बड़ी अच्छी फ़सल हुई । ज़रूरत का थोड़ा धान रखकर बाकी धान बाज़ार में बेच दिया गया ।

एक दिन दामोदर ने छोटे संन्यासी से कहा, "स्वामीजी, समय सदा एक सा नहीं होता । हर आदमी को स्वजनों की ज़रूरत पड़ती है । मेरी सलाह है कि आप गृहस्थ बन जाइये । मेरी बेटी शोभा को आप जानते ही हैं । वह आपके अनुकूल धर्मपत्नी प्रमाणित होगी । आप उससे विवाह कर लीजिये!"

छोटे संन्यासी सुदास को दामोदर की पुत्री शोभा की विनम्रता और कार्यकुशलता बहुत अच्छी लगती थी । उसने विवाह के लिए अपनी स्वीकृति दे दी! शुभ मुहूर्त में सुदास का विवाह शोभा के साथ संपन्न होगया । इसके बाद सब लोग छोटे संन्यासी सुदास को छोटे मालिक कहकर पुकारने लगे ।

कुछ साल बीत गये । इस बीच सुदास के दो पुत्र हुए । कालान्तर में वे पल-बढ़कर जवान हुए और खेतीबारी के कामों में अपने पिता खुदास एवं नाना दामोदर की मदद करने लगे ।

उन्हीं दिनों वृद्ध ज़मींदार ठाकुर जयराज का देहान्त हो गया । ठाकुर के बेटे अजय ने सुदास से अपने पिता की ज़मीन वापस माँगी । सुदास ने कहा कि ठाकुर साहब ने यह ज़मीन उसे दान में दी थी । विवाद बढ़ता चला गया । कुछ लोग छोटे ठाकुर अजय के पक्ष में हो गये और कुछ लोग छोटे मालिक सुदास के पक्ष में होगये ।

आपस का वैमनस्य बढ़ता चला गया । एक दिन छोटे ठाकुर के कारिन्दों ने मौक़ा देखकर छोटे
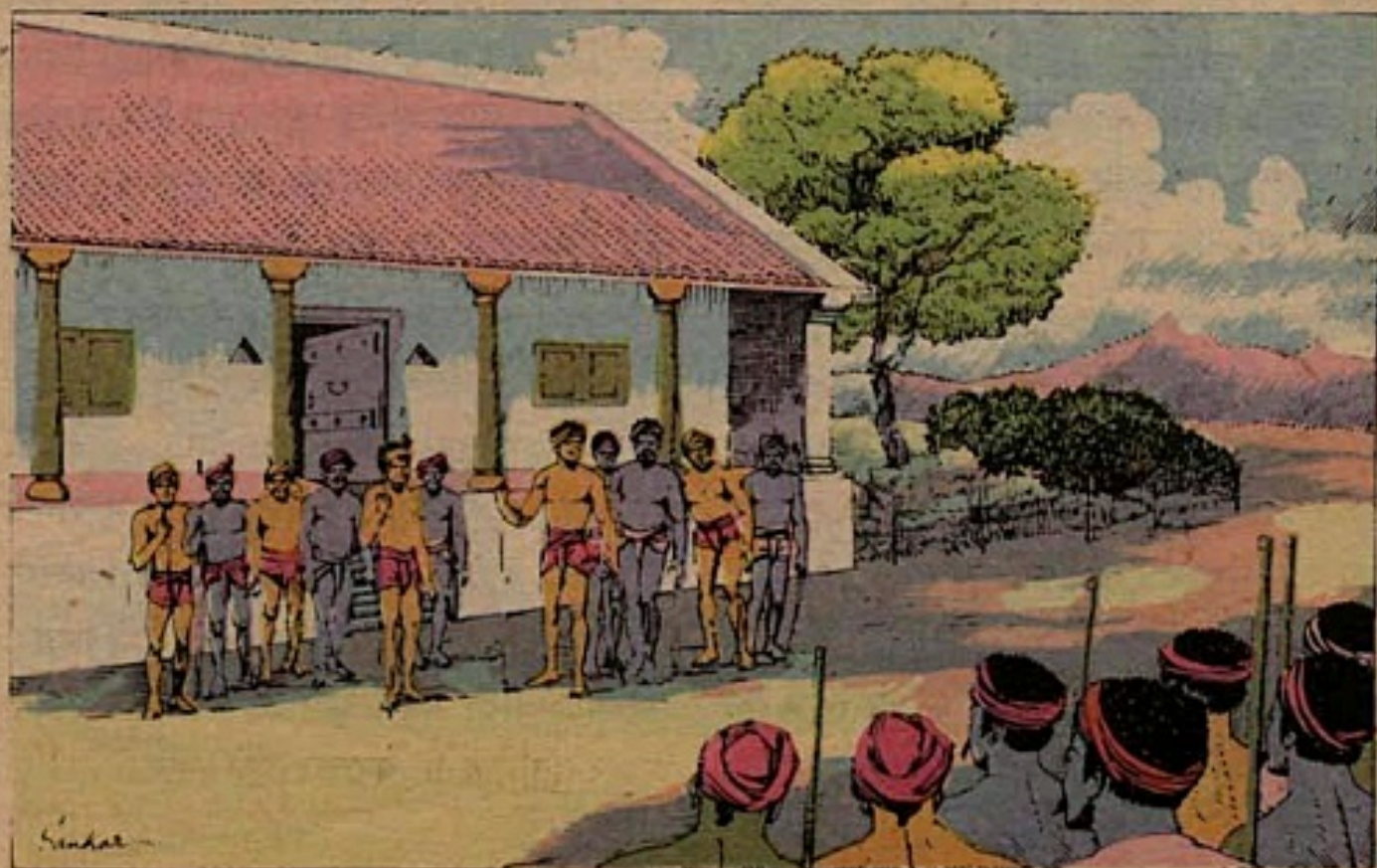
मालिक सुदास के मकान पर आक्रमण कर दिया। सुदास के समर्थकों ने उनका सामना किया। दोनों दलों के लोगों ने लाठी एवं तलवारें तान लीं और लड़ने-मरने को तैयार हो गये। यह संयोग था या सौभाग्य कि तभी संन्यासी शिवस्वामी तीर्थाटन से लौट आये। उन्हें देखते ही दोनों दलों के लोगों ने लड़ना छोड़ दिया और वे उन्हें प्रणाम कर मौन खड़े रह गये।

शिवस्वामी ने उन लोगों से पूछा, "आज से बीस वर्ष पूर्व यहाँ एक कुटी थी। उसमें मेरा एक शिष्य सुदास रहता था। अब वह कहाँ है?"

इतना सुनते ही सुदास शिवस्वामी के चरणों में गिर पड़ा और विलाप करने लगा। शिवस्वामी ने उसे उठने का आदेश दिया और प्यार से उसके कंधे थपथपाये। अन्य ग्रामवासियों एवं छोटे ठाकुर अजय ने भी शिवस्वामी के चरण स्पर्श किये।

इसके बाद शिवस्वामी ने दोनों दलों का झगड़ा निपटाया और उनके बीच शांति कायम की। उस रात सुदास ने शिवस्वामी से कहा, "गुरुदेव, स्वामीजी, आपने तीर्थाटन पर जाते समय मुझे अपने साथ ले जाने की स्वीकृति नहीं दी थी। आपने कहा था कि अभी वह समय नहीं आया है। आपने मुझसे धैर्य रखने के लिए कहा था। अब आप क्या कहते हैं?"

शिवस्वामी मन्द-मन्द मुस्कराने लगे, पर बोले कुछ नहीं। सुदास ने शिवस्वामी के चरणों का स्पर्श कर पुनः कहा, "गुरुदेव, अब मैं संन्यास लेकर आपके चरण-चिन्हों का अनुसरण करना चाहता हूँ। आप आज्ञा दें!"

शिवस्वामी ने उसे आदेश देकर कहा, "वत्स सुदास, संसाररूपी भँवर से बाहर निकलने के लिए तुम्हारे सम्मुख यह अच्छा अवसर है। तुम्हारे पुत्र बड़े होगये हैं। वें खेतीबारी का काम करते हुए अपनी माता की देखभाल भी कर सकते हैं।"

गुरु-शिष्य के बीच सब कुछ निश्चिय हो गया। दो दिन बाद छोटा मालिक बना सुदास फिर से छोटा संन्यासी बना और घर-संसार का त्याग कर अपने गुरु शिवस्वामी के साथ निकल पड़ा।

विचारमग्न आदमी

श्रीपुर के वर्तमान जमींदार देवसिंह अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। उनके पिता ने उन्हें पढ़ाने-लिखाने के अनेक प्रयत्न किये, पर उन्हें सफलता न मिली। पिता के देहावसान के बाद देवसिंह जमींदार कहलाये। वे अनेक प्रकार के मनोरंजन में अपना समय व्यतीत करते। शिकार खेलना, स्वादिष्ट भोजन करना और मित्रमंडली के साथ मनोविनोद करना यही उनकी दियचर्या थी। देवसिंह की यह धारणा थी कि जो लोग सदा किसी विचार में डूबे रहते हैं, वे बहुत ही असाधारण और कुशाग्रबुद्धि होते हैं। यही कारण था कि वे अपनी कचहरी के एक कर्मचारी गंगादास को विशेष रूप से पसन्द करते थे।

गंगादास का स्वभाव था कि वह हमेशा कुछ न कुछ सोचा करता था। जमींदार देवसिंह सदा उसे अपने साथ रखते थे। जब कभी उन्हें मौक़ा मिलता, वे गंगादास से पूछते, "गंगादास, बताओ तो, क्या सोच रहे हो?" गंगादास जो कुछ सोचता होता, सच-सच बता देता।

एक रात जमींदार देवसिंह गहरी नींद सो रहे थे। किसी आहट से उनकी नींदखुल गयी। वे अपने कमरे से बाहर निकले। बरामदे में गंगादास सोया करता था। इस समय वह बिस्तर पर बैठा किसी सोच में डूबा हुआ था। जमींदार ने पूछा, "गंगादास, बताओ, तुम क्या सोच रहे हो?"

"सरकार, मैं इस बात पर विचार कर रहा हूँ कि चोर एवं लुटेरे अमावास्या की अंधेरी रातों में ही चोरी करने के लिए क्यों निकलते हैं?" गंगादास ने उत्तर दिया।

जमींदार देवसिंह गंगादास का उत्तर सुनकर संतुष्ट होगये और कमरे के अन्दर जाकर लेट गये। जब उन्हें काफ़ी देर तक नींद नहीं आयी, तब उनके मन में यह विचार आया कि वह यह जान लें कि गंगादास इस समय क्या सोच रहा है।

इस विचार के आते ही जमींदार देवसिंह कमरे से बाहर निकले और पूछा, "गंगादास, क्या

तुम सो गये?"

"जी नहीं, सरकार, मैं सोच रहा हूँ ।" गंगादास ने उत्तर दिया ।

"क्या सोच रहे हो?" देवसिंह ने पूछा।

"हुजूर, मैं यह सोच रहा हूँ कि चोर संपन्न परिवारों के घरों में ही चोरी करने के लिए क्यों जाते हैं!" गंगादास ने उत्तर दिया ।

गंगादास की बात सुनकर जमींदार को बड़ा संतोष हुआ और वे यह सोचते हुए अपने कमरे में जाकर लेट गये—"वाह, गंगादास जैसा विचारशील व्यक्ति तो बड़ा दुर्लभ होता है ।"

इसके बाद जमींदार की आँख लग गयी । जब भोर रहते ही उनकी आँख खुली तो वे अपने कमरे से बाहर निकले । गंगादास अभी भी बिस्तर पर बैठा सोच में मग्न था । जमींदार ने पूछा, "गंगादास, बताओ, इस समय तुम क्या सोच रहे हो?"

"सरकार, मैं यह सोच रहा हूँ कि थोड़ी देर पहले आप की तिजोरी का धन लूटनेवाले लूटेरे उस धन का क्या करेंगे?" गंगादास ने कहा ।

गंगादास का जवाब सुनकर जमींदार का दिल काँप उठा । वे दौड़कर तिज़ोरीवाले कमरे में पहुँचे, देखते क्या हैं, तिजोरी पूरी तरह ख़ाली है ।

जमींदार देवसिंह का पारा चढ़ गया । उन्होंने कड़कती आवाज़ में कहा, "अरे नालायक़, चोर जब मेरा धन लूट रहे थे तो तुम देखकर भी चुपचाप बैठे रहे! अगर तुम चिल्ला उठते तो क्या हम लोग उन्हें पकड़ न लेते?"

गंगादास ने कोई जवाब न दिया । जमींदार ने आँखें लाल कर के पूछा, "अरे दुष्ट, तू बोलता क्यों नहीं?"

गंगादास गंभीर स्वर में बोला, "सरकार, क्या बताऊँ? मैं इस वक्त इस बात पर विचार कर रहा हूँ कि चोर जब आपका धन लूटकर ले जारहे थे, तब मेरे मन में यह विचार क्यों नहीं आया?"

जमींदार देवासिंह की आँखें खुल गयीं । उन्होंने तुरन्त गंगादास को नौकरी से हटा दिया और इस तरह निकम्मे सोचविचार में डूबे लोगों को नौकरी न देकर कुशल एवं कर्मठ कर्मचारियों को अपनी कचहरी में नियुक्त किया ।

८

[अमरपाल के नेतृत्व में गये हुए सैनिकों ने भयंकर पक्षियों को प्राणों के साथ जला डाला। उसी समय उन्हें समाचार मिला कि राजकुमारी कांतिमती को बाघचर्मधारी पालकी पर कहीं ले जा रहे हैं। इस पर चित्रसेन तथा उग्राक्ष ने सेना के साथ जाकर पालकी को रोका। तब बाघचर्मधारियों के सरदार ने राजकुमारी का संहार करने का आदेश दिया। आगे पढ़िये...]

बाघचर्मधारियों के सरदार ने अपने अनुचरों को जो चेतावनी दी, उसे सुनकर एक ओर से चित्रसेन ने और दूसरी ओर से उग्राक्ष तथा उसके सेवकों ने उनपर हमला किया। देखते-देखते बाघचर्मधारी राक्षसों की शिला गदाओं तथा चित्रसेन के अनुचरों की तलवारों के वारों से धराशायी होने लगे। इस जय-पराजय की आशंका करके बाघचर्मधारियों के नायक ने अपना सारा साहस बटोर कर एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में भाला लिया और भयंकर गर्जन किया— "अब हमारा अंतिम समय निकट आ गया है, तुम लोग तुरन्त कांतिमती का संहार करो।"

बाघचर्मधारियों के नायक की पुकार सुनकर चित्रसेन चकित रह गया। उसने सोचा कि राजकुमारी कांतिमती उन दुष्टों के हाथों निश्चय ही अपने प्राण खो बैठेगी। उसके तथा राजकुमारी की पालकी के बीच दस शुत्र प्राणों का मोह त्याग

कर लड़ रहे थे । वह उनका वध करके ही पालकी के समीप पहुँच सकता था ।

चित्रसेन आवेश में आकर अपनी तलवार से शत्रुओं को घायल करते हुए अपनी बगल से लड़नेवाले शत्रुओं को भूल कर सीधे पालकी की ओर बढ़ने लगा । इतने में तपाक से पालकी के किवाड़ खुल गये । दूसरे ही पल में विद्युत की गति से कांतिमती पालकी से नीचे कूद पड़ी और समीप में मरे पड़े हुए शत्रु सैनिक की तलवार लेकर पालकी की ओर बढ़नेवाले बाघचर्मधारी सैनिकों का सामना किया । इसे देख उग्राक्ष हुंकार करके बोला—"लो, कांतिमती, मैं अभी आया । तुम ने सचमुच अपने को क्षत्रिय कन्या कहलाया ।" यह कह कर अपने सामने आनेवाले बाघचर्मधारियों को इस तरह अपनी गदा से उड़ा दिया, जैसे गेंदोंको उड़ाया जाता है, तब वह पालकी के समीप पहुँचा । इस बीच चित्रसेन भी पालकी के निकट आया । उन्हें रक्त सिक्त तलवार धारण की हुई कांतिमती दिखाई दी ।

"ये हैं महाराजा चित्रसेन और मैं उग्राक्ष हूँ । यह सारा जंगल मेरा है । ये सब राक्षस मेरे अनुचर हैं । मेरे इशारे पर ये लोग अपने प्राणों का मोह त्यागकर मर-मिटने के लिए सदा तैयार रहते हैं । इन की समता कर सकनेवाले वीर नहीं के बराबर हैं । इन पर मुझे गर्व है । इनके भरोसे मै सारी दुनिया पर विजय प्राप्त कर सकता हूँ । समय पर अगर हम यहाँ पर न पहुँचते तो न मालूम तुम्हारी क्या हालत हो जाती । इस उपकार के लिए तुम्हें हमें धन्यवाद देना चाहिए ।" उग्राक्ष ने कांतिमती से कहा ।

कांतिमती ने उग्राक्ष की ओर क्रोध भरी दृष्टि प्रसारित की, फिर चित्रसेन की ओर सिर उठाकर देखे बिना ही झट पीछे घूम पड़ी और पालकी में जा बैठी ।

राजकुमारी कांतिमती का यह व्यवहार देख चित्रसेन को बड़ा क्रोध आया । उसने अपने प्राणों का मोह त्याग कर बाघचर्मधारियों से युद्ध किया और उसकी रक्षा की है । फिर भी राजकुमारी ने इस के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट नहीं की, उलटे तिरस्कार पूर्ण दृष्टि प्रसारित कर पालकी में जा बैठी । यह करनी चित्रसेन को अत्यन्त अपमान जनक लगी ।

"उग्राक्ष, अब हमारा कर्तव्य पूरा हो चुका है। अब हमें अपनी सेनाओं के साथ धवलगिरि के लिए प्रस्थान करना उचित होगा।" चित्रसेन ने कहा।

चित्रसेन की बातें सुनकर उग्राक्ष चौंक पड़ा। उनकी पूर्वयोजना के अनुसार कपिलपुर के दुर्ग पर घेरा डालना था। इसी काम से थोड़ी देर पहले कुछ सैनिकों के साथ अमरपाल चला गया था। पहले यह निर्णय हो चुका था कि कपिलपुर के दुर्ग पर अधिकार करके तब राजद्रोही नागवर्मा का अन्त करना है। पर इस वक्त चित्रसेन का व्यवहार कुछ विचित्र सा मालूम हो रहा है।

"चित्रसेन, हमने सबसे पहले कपिलपुर दुर्ग पर अधिकार करने का निश्चय कर लिया था न। मार्गमध्य में हमने सौभाग्य से राजकुमारी की रक्षा की है। मुझे आश्चर्य होता है कि अचानक आपने इस प्रकार अपना पूर्व निर्धारित निर्णय क्यों बदल लिया? इस बीच में ऐसी कोई विस्मय कारी घटना भी तो नहीं घटी कि हमें अपनी योजना में परिवर्तन करना पड़े। आखिर क्या कारण है। आप जब कभी कोई निर्णय लेते हैं, सोच-समझ कर लेते हैं और उस पर दृढ़ रहते हैं। उसे अमल किये बिना कभी पीछे नहीं हटते। क्या मैं जान सकता हूँ कि आप को इस प्रकार अपना निर्णय क्यों बदलना पड़ रहा है?" उग्राक्ष ने तुतलाते हुए कहा।

"क्या कहा, हमने राजकुमारी की रक्षा की है। वही कुछ ऐसा स्वांग रच रही है, मानो उसीने हमारी रक्षा की हो। अमरपाल ने इसके पहले हमें बताया था कि महाराजा वीर सिंह को ज्वाला द्वीप के निवासियों के साथ समझौता करनेवाले नागवर्मा ने बन्दी बनाकर ज्वाला द्वीप में भेज दिया है। ऐसी हालत में हम युद्ध करके कपिलपुर पर अधिकार कर लेंगे तो आख़िर हमें किसका राज्याभिषेक करना होगा?" चित्रसेन ने क्रोध भरे स्वर में कहा।

चित्रसेन की बातें सुनकर कांतिमती चौंक उठी और पालकी से बाहर आई और चित्रसेन की ओर शंका भरी दृष्टि दौड़ा कर पूछा— "बताइए, मेरे पिताजी को द्रोही नागवर्मा के द्वारा ज्वाला द्वीप में भेजे जाने का समाचार देनेवाला वह अमरपाल कौन है?"

"ओह, ऐसी बात है?" चित्रसेन ने कहा।

"चित्रसेन, तब तो हम उस महाराजा की रक्षा करेंगे।" उग्राक्ष ने व्यग्रता पूर्वक कहा।

"हम बिनबुलाये मेहमान क्यों बने? हम से किस ने ऐसी मदद मांगी है! किसी की अभ्यर्थना के बिना हम लोग व्यर्थ ही अपने प्राण खतरे में क्यों डाले? आख़िर इन लोगों के साथ हमारा सम्बन्ध ही क्या है? जो लोग किसी का मानवता की दृष्टि से उपकार करना चाहते हैं, उनकी ऐसी उपेक्षा सहज नहीं है। हमने अनावश्यक इस काम में दखल देने की कोशिश की। चलो, हम अपने काम पर चले चलें।" चित्रसेन ने डाँटा।

"मैं आप से सहायता की अभ्यर्थना करती हूँ। मुझे अफ़सोस है कि मैं ने जलदबाजी में आकर कुछ कह दिया। कृपया मेरी बातों को भूल जाइए। यदि आपके दिल को ठीस पहुँची हो तो मुझे क्षमा करें।" कांतिमती ने कहा।

"थोड़ी देर पहले आप का व्यवहार कुछ भिन्न था। मेरे साथ आपने अपने सामन्त राजा जैसा भी व्यवहार नहीं किया। शायद मेरे बारे में आप कुछ नहीं जानती होंगी। इस वक्त आप जिस जंगल में हैं, यह सारा प्रदेश मेरा है। यहाँ से समीप दिखने वाला अपूर्व भवन मेरा है— उस से जुड़ा हुआ नगर मेरी राजधानी है। भविष्य में इस बात का स्मरण रखिये, किसी व्यक्ति के बारे में अनजाने में भी ऐसी हल्की धारणा रखना उचित नहीं है।" चित्रसेन ने गंभीर स्वर में कहा।

"वह यों तो कपिलपुर का ही निवासी है। पर नागवर्मा की सेना में भर्ती होकर हमारे हाथों में बन्दी बना और बाद को हमें कुछ रहस्य बता कर उसने हमारी बड़ी मदद की।" चित्रसेन ने जवाब दिया।

"अमरपाल की बातें झूठ हैं। संभवतः वह सच्ची बात जानता न होगा। मेरे पिताजी दुर्ग के किसी भूगर्भ गृह में बन्दी बनाये गये होंगे। उनको ज्वाला द्वीप में ले जाने का सवाल ही नहीं उठता। झूठ-मूठ इस प्रकार की अफवाहें उड़ाना किसी के लिए भी शोभा नहीं देता। विशेष कर एक महाराजा के सम्बन्ध में कुछ मिथ्या पूर्ण बातें फैलाने में ज्यादा सावधानी बरतने की आवश्यकता है।" कांतिमती ने कहा।

राजकुमारी कांतिमती के अधरों पर मंदहास

खिल उठा। वह बोली—"अभी थोड़ी देर पहले उग्राक्ष ने मुझे बताया कि यह सारा जंगल उसी का है।"

चित्रसेन ने उग्राक्ष की ओर क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखा, चित्रसेन की तीक्ष्ण दृष्टि देख कर उग्राक्ष घबरा गया। उस के मुँह से बोल नहीं फूटे। थोड़ी देर बाद रोनी सूरत बना कर बोला— "यह जंगल भले ही मेरा हो, पर मैं महाराजा चित्रसेन का अनुचर हूँ। इसलिये यह जंगल भी इन्हीं का है।"

"अब मेरा संशय दूर हुआ। कपिलपुर के राजा वीरसिंह की इकलौती पुत्री हुई मैं— कांतिमती चित्रनगर के महाराजा चित्रसेन की सहायता माँगती हूँ। राजद्रोही बने नागवर्मा के द्वारा कारागार में बन्दी बने मेरे पिताजी की रक्षा कीजिए और उस द्रोही को उचित दण्ड देने का प्रबन्ध कीजिए। यह मैं आपसे निवेदन करती हूँ।" कांतिमती ने अत्यन्त आदर पूर्ण स्वर में प्रार्थना की।

कांतिमती का निवेदन सुनकर चित्रसेन का हृदय आनन्द से भर उठा। उसने उग्राक्ष की ओर मुड़कर कहा— "उग्राक्ष! तुम्हारी अहंभरी बातें किस प्रकार संदेह का कारण बन गयीं, समझ गये हो न? आज से तुम ऐसी अनर्गल बातें अपने मुँह से न निकाला करो कि 'यह जंगल मेरा है।' इसके अलावा जैसे थोड़ी देर पहले तुमने कहा था कि मैं महाराजा का आदमी हूँ। उनका अनुचर हूँ। पर ध्यान रखो, तुम मेरे अनुचर नहीं हो— राक्षस हो— और मेरा सेवक हो।"

"हाँ हाँ। मैं सचमुच सौ प्रतिशत आपका सेवक हूँ।" यह कहकर उग्राक्ष ने कांतिमती की ओर मुखातिब हो प्रणाम किया।

कांतिमती मुस्करा उठी। चित्रसेन दुगुने उत्साह से अपने अनुचरों की ओर मुड़कर बोला— "मैं समझता हूँ कि बाघचर्मधारियों में से एक भी प्राणों के साथ बच कर नहीं भागा है। अच्छी बात है अब हम सीधे कपिलपुर के लिए प्रस्थान करेंगे। तुम में से चार लोग पालकी उठाओ।" फिर कांतिमती से बोला— "राजकुमारी, आप पालकी पर सवार हो जाइए।"

कांतिमती अस्वीकार सूचक सिर हिला कर बोली— "महाराज, इस वक्त मैं बन्दी नहीं हूँ

स्वतंत्र हूँ। इसलिए मुझे अनुमति दीजिए, मैं भी आपके साथ स्वेच्छापूर्वक घोड़े पर सवार होकर चलूँ।"

"जी हाँ, महाराज, यही उत्तम होगा। आपने देखा ही है, थोड़ी देर पहले राजकुमारी ने बाघचर्मधारियों का सामना कैसे किया था? राजकुमारी ने अपनी असाधारण वीरता का परिचय देकर दुशमन को चन्द मिनटों में भगा दिया।" उग्राक्ष ने कहा।

"अब उनको तलवार धारण कर युद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। घोड़े पर सवार होकर हमारे साथ चल सकती हैं। पर कपिलपुर दुर्ग पर अधिकार करना तथा महाराजा वीरसिंह को कारागार से मुक्त करना— यह सब हमारा काम है। इस प्रयत्न में शत्रु के साथ जो युद्ध करना है, वह हम और हमारे सैनिक करेंगे।" चित्रसेन ने कहा।

दूसरे ही क्षण में चित्रसेन के सैनिक और उग्राक्ष के अनुचर राक्षस दो दलों में बंट गये। घोड़ों पर सवार हो चित्रसेन तथा कांतिमती के पीछे कपिलपुर की ओर निकल पड़े। एक घंटे की यात्रा के बाद वे लोग पहाड़ के समीप में स्थित कपिलपुर के दुर्ग के पास पहुँचे। दूर से उन लोगों ने देखा— दुर्ग के बुर्जों पर शत्रु सैनिक तैनात हैं और क़िले पर आसमान में दो भयंकर पक्षी पहरा दे रहे हैं।

उन भयंकर पक्षियों को देख चित्रसेन के साथ उग्राक्ष भी विस्मय में आ गया। उग्राक्ष बड़ी उद्विग्नता से चित्रसेन के पास दौड़कर पहुँचा और बोला— "महाराज, यहाँ पर भी हमें भयंकर पक्षियों का पाला पड़ा है। आप ने अमरपाल को थोड़ी सेना के साथ पहले ही भेज दिया था। उस का कुछ पता नहीं चल रहा है। दुश्मन ने कहीं उन सबका खात्मा तो नहीं कर डाला है न?"

चित्रसेन के मन में भी कुछ इसी प्रकार की शंका हुई। उस ने दुर्ग के द्वारों की ओर दृष्टिपात किया। दुर्ग के द्वार बन्द थे। द्वारों के आगे किन्हीं मृत सैनिकों के निशान नहीं दिखे। संभवतः अमरपाल यह विचार कर कि दुर्ग पर क़ब्ज़ा करना शक्ति के बाहर की बात है, वह कहीं इसी प्रदेश में मौक़े की प्रतीक्षा करता होगा।

चित्रसेन इस प्रकार विचार कर रहा था कि
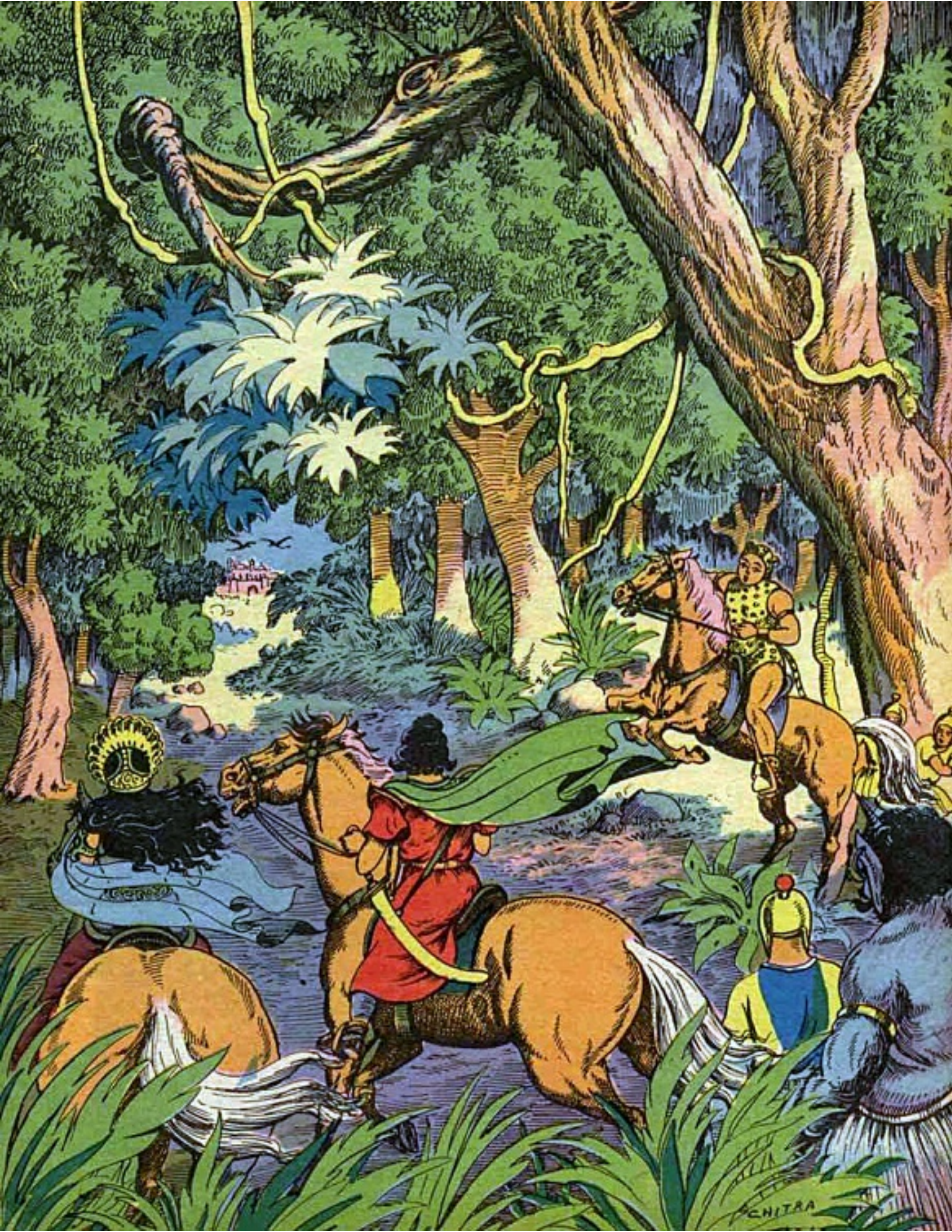
थोड़ी दूर पर पेड़ों के बीच से कोलाहल सुनाई दिया। कुछ ही क्षणों में अमरपाल अपने घोड़े को दौड़ाते चित्रसेन के समीप आया और बोला— "महाराज, देखते हैं न, नागवर्मा ने खास सेना को लेकर धवलिगिरि पर आक्रमण करने जाते वक्त इधर दुर्ग की रक्षा का कैसा प्रबन्ध किया है। मैं काफी देर से देख रहा हूँ, ये दो भयंकर पक्षी दुर्ग पर पहरा दे रहे हैं। ऐसा लगता है, दुर्ग में इन्हें छोड़ और पक्षी नहीं हैं। बुर्जियों पर भी गश्त लगाने वाले अधिक संख्या में नहीं हैं। फिर भी मेरे साथ जो थोड़ी सेना है, उस को लेकर दुर्ग पर हमला बोल देना ख़तरे से खाली नहीं है। इसीलिए मैं आप की प्रतीक्षा कर रहा था!"

"तुमने बड़ी सूझ-बूझ से काम लिया। यदि तुम दुस्साहस कर बैठते तो तुम्हारे साथ रहनेवाली सारी सेना का सर्वनाश हो जाता। अच्छा हुआ कि तुम हमारी प्रतीक्षा करते रहे!" चित्रसेन ने अमर पाल के निर्णय का समर्थन किया, फिर उग्राक्ष की ओर मुड़कर बोला— "उग्राक्ष, हमारे सामने अब एक ही उपाय है, दुर्ग के द्वारों को तोड़कर उस के भीतर प्रवेश करने केलिए। इस कार्य केलिए तुम्हारे अनुचर ही समर्थ हैं।"

उग्राक्ष ने एक बार चित्रसेन की ओर देखा, फिर दुर्ग पर उड़नेवाले भयंकर पक्षियों की ओर दृष्टि दौड़ा कर सिर खुजलाते हुए बोला— "मैं अपने अनुचरों में कुछ लोगों को दुर्ग के द्वार तोड़ने और कुछ लोगों को दुर्ग की दीवारों को नींव सहित उखाड़ने के कार्य में लगा दूँगा, लेकिन..... ये भयंकर पक्षी ....." उग्राक्ष के चेहरे पर घबराहट झलक उठी।

"उग्राक्ष, तुम चिंता न करो, उन पक्षियों के हमला करने से रोकने की जिम्मेदारी मेरी है।" अमरपाल ने धीरज बंधाया।

"यह कैसे संभव है?" चित्रसेन ने पूछा।

"आज सुबह मैंने जब इन पक्षियों की झोंपड़ियों में आग लगवायी थी, तब मैं ने देखा, ये पक्षी आग के नाम से ही कैसे थर्रा उठते हैं? इसलिए हमारे सैनिकों में से हर दस आदमियों के पीछे एक के हाथ में जलती मशाल दे, तो फिर पक्षी अपने सवारों के आदेशों का पालन नहीं करेंगे। और न हम पर हमला करने की हिम्मत करेंगे!" अमरपाल ने समझाया। (क्रमशः)

दोष किसका?

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये, पेड़ पर से शव उतार कर कंधे पर डाला और हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की तरफ़ चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने पूछा, "राजन, आपने अनेक कष्टों को सहकर जिस कार्य को अपने हाथ में लिया, उसे पूरा करने के लिए आपके मन में जो दृढ़ लगन और संकल्प है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। लेकिन मेरे मन में एक सवाल है कि आपको जिसने इस कार्य में प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित किया है, क्या उसके अन्दर वे आवश्यक गुण हैं, जिनके द्वारा वह इस कार्य की सफलता निश्चित कर सके? यह भी संभव है कि आप अपनी सामर्थ्य से अधिक इस कार्य के बोझ को वहन कर रहे हो। मैं आपको प्रसन्न नाम के एक किसान और उसके पुत्र जितेंद्र और ज्ञानेंद्र की एक कहानी सुनाता हूँ, शायद आपको कोई संकेत मिल जाये। आप श्रम को भुलाने के लिए सुनिये!"

बेताल कथा

बेताल ने कहानी आरंभ कीः

बहुत समय पहले धरणिगिरि नाम के एक गाँव में प्रसन्न नाम का एक संपन्न किसान रहता था। उसके दो पुत्र थे— जितेंद्र और ज्ञानेंद्र। जितेंद्र स्वभाव से नम्र और विचारशील था, जबकि ज्ञानेंद्र उद्दण्ड प्रकृति का था।

किसान प्रसन्न ने अपने सारे खेतों को ठेके पर दे रखा था, फिर भी वह प्रति दिन खेत में जाकर वहाँ पर हो रहे काम का पर्यवेक्षण करता था। उसका ऐसा विचार था कि भले ही खेत को ठेके पर दे दिया हो, पर किसान को उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, इससे भूदेवी का अपमान होता है।

बड़ा पुत्र जितेंद्र प्रति दिन अपने पिता के साथ खेत पर जाता और ठेकेदारों से इस सम्बन्ध में अच्छी तरह से विचार-विमर्श करता कि किन नये उपायों से फ़सल की अधिकाधिक वृद्धि की जा सकती है। अपने इस उद्यमशील स्वभाव के कारण जितेंद्र ने ग्रामवासियों में अच्छा नाम कमाया था।

छोटे पुत्र ज्ञानेंद्र की रुचि शुरू से ही खेती बारी में नहीं थी। कभी उसका पिता उसे कोई काम सौंपता तो वह बड़ी अनिच्छा से और बार-बार याद दिलाने पर ही खेती-सम्बन्धी उस काम को करता था।

ज्ञानेंद्र का काम था—गाँव के निकम्मे युवकों के साथ बैठकें जमाना, आवारागर्दी करना और राक्षसों के मायाजालों तथा राजनीतिज्ञों के कार्यकलापों की चर्चा करना। अपनी इस हरक़तों के कारण ज्ञानेंद्र अपने पिता की नज़रों में ही नहीं, बल्कि गाँव वालों की दृष्टि में भी गिर गया था। प्रसन्न ने कई अवसरों पर जितेंद्र का उदाहरण देकर ज्ञानेंद्र को सुधारने का प्रयत्न किया, पर उसे कोई सफलता न मिली। ज्ञानेंद्र को डांटा, धमकाया भी गया, पर उसमें किसी तरह का परिवर्तन नहीं आया। इस पर प्रसन्न अत्यन्त निराश हो गया।

ऐसा नहीं था कि ज्ञानेंद्र अपने कारनामों से परेशान न हो। वह अक्सर सोचता कि उसका समय व्यर्थ ही बरबाद हो रहा है। पर वह भी मजबूर था। खेतीबारी में उसका मन नहीं लगता था।

इसी तरह दिन बीतते गये। एक दिन अचानक ज्ञानेंद्र अपने पिता के पास आया और बोला, "पिताजी, आपने अनेक बार मुझे अयोग्य बताकर डाँटा है। पर अब मैं बहुत सोच-विचारकर इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि मुझे खेतीबारी में न लगकर कोई अच्छा व्यापार शुरू करना चाहिए। व्यापार के लिए कोई बड़ा शहर ही उपयुक्त होगा। क्यों न मैं वीरनगर चला जाऊँ!"

ज्ञानेंद्र की बातें सुनकर प्रसन्न को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बोला, "व्यापार के लिए पूँजी चाहिए, तुम कहाँ से लाओगे?"

"पूँजी के रूप में आप मुझे थोड़ा-सा धन दे दीजिये! अगर आप मुझे पूंजी नहीं देना चाहते हैं तो जायदाद में से मेरा हिस्सा अलग कर मुझे दे दीजिये!" ज्ञानेंद्र ने कहा।

पुत्र की बात पर प्रसन्न नाराज़ हो उठा, बोला, "कई पीढ़ियों से हम लोग इस भूमाता की शरण में पलते आरहे हैं। अब तुम इस भूमाता की छाया से दूर नगर में जाकर व्यापार करना चाहते हो? तुम्हारा यह विचार तुम्हें कभी उन्नति नहीं करने देगा। तुम शहर की चमक-दमक के प्रलोभन में पड़कर चाल चल रहे हो। अपने शरीर में प्राण रहते मैं तुम्हारी चाल को सफल नहीं होने दूँगा।"

ज्ञानेंद्र अपने पिता को क्रोधित देखकर थोड़ा भी विचलित नहीं हुआ। वह दृढ़तापूर्वक बोला, "मैं शहर की चमक-दमक या किसी लत के कारण आपसे धन नहीं माँग रहा। व्यापार में मेरी रुचि है। मैं निश्चय ही व्यापार करूँगा। आप मुझे

धन दे सकें तो धन दे दीजिये, वरना मुझे मेरे हिस्से की जायदाद दे दीजिये! यही मेरा अन्तिम निर्णय है ।"

पिता और पुत्र के बीच बड़ी देर तक वाद-विवाद चलता रहा । अन्त में यह समस्या जितेंद्र तथा उस गाँव के दो-तीन बुजुर्गों के समक्ष रखी गयी । वहाँ भी कोई समझौता न हो सका । काफी सोच-विचार के बाद बुजुर्गों ने यह निर्णय सुनाया—"प्रसन्न अपने छोटे बेटे ज्ञानेंद्र को थोड़ा धन देगा । उसे ही पूंजी मानकर ज्ञानेंद्र अपना व्यापार शुरू कर सकता है ।" इसके साथ ही यह शर्त भी रख दी गयी कि ज्ञानेंद्र को वर्ष समाप्त होने से पहले थोड़ा-बहुत लाभ दिखाना होगा, वरना ज्ञानेंद्र व्यापार आदि छोड़कर अपने बड़े भाई जितेंद्र के खेतीबारी के काम में मदद करेगा ।

ज्ञानेंद्र ने यह शर्त खुशी से स्वीकार कर ली । प्रसन्न ने अनिच्छापूर्वक ही कुछ धन ज्ञानेंद्र को दे दिया ।

ज्ञानेंद्र ने वीरनगर जाते हुए अपने माता-पिता को प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद माँगा । माँ ने आँखों में आँसू भरकर आशीर्वाद दिया, पर पिता ने कठोर स्वर में कहा, "तुम जा सकते हो । हमारा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है । पर मेरी ओर से तुम्हें किसी प्रकार का सहयोग अथवा सहायता न मिलेगी ।"

ज्ञानेंद्र पिता से प्राप्त धन लेकर व्यापार करने के लिए वीरनगर पहुँचा । लेकिन व्यापार में अनुभव न होने के कारण छह महीने के अन्दर उसने सारा धन खर्च कर दिया । इस बीच वह शराब आदि बुरे व्यसनों का शिकार होगया और बीमार होकर घर लौट आया ।

ज्ञानेंद्र की माँ अपने बेटे की बुरी दशा देखकर रो पड़ी । पर उसका पिता क्रोधित होकर बोला, "तुम भूमाता पर अविश्वास करके धूप-छाँह के पीछे भागते रहे । देर से ही सही, तुम्हारा दिमाग़ तो ठिकाने आया ।" इस तरह डांट-फटकार कर प्रसन्न ने होशियार वैद्यों से ज्ञानेंद्र का इलाज करवाया ।

कुछ ही दिनों में ज्ञानेंद्र स्वस्थ हो गया । प्रसन्न ने उसे समझाकर कहा, "तुमने जो चाहा, वह

किया। तुम्हें सबक़ भी मिल गया। शर्त के अनुसार कल से तुम जितेंद्र के साथ खेतों पर जाना शुरू करो! वह तुम्हें खेतीबारी सम्बन्धी सारा काम समझा देगा।"

ज्ञानेंद्र अनिच्छा से ही खेतीबारी के काम में लग गया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर विक्रमार्क से पूछा, "राजन, आप यह बताइये, पिता-पुत्र के बीच हुए इस संघर्ष में किसका व्यवहार उचित और दायित्वपूर्ण रहा! पिता-पुत्र के बीच के मनमुटाव और धन के अपव्यय में कोई एक दोषी है या दोनों ही? आप विचार करके अपना निर्णय सुनाइये। यदि आप इस संदेह का समाधान अगर जानकर भी न देंगे, तो आपका सिर फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा।"

विक्रमार्क ने उत्तर दिया, "सारा दोष तो प्रसन्न का ही है। ज्ञानेंद्र स्वभाव का अच्छा लड़का है। बुद्धिमान भी है और अपनी रुचि के अनुकूल कुछ करना भी चाहता है। अपने पुत्र के मन की भावना और रुचि को समझकर उसके लिए उचित वातावरण की व्यवस्था करना पिता का परम कर्त्तव्य है। यदि पिता किसान है तो उसका पुत्र भी इच्छा न रहते हुए भी किसान ही बना रहे, ऐसा हठ न केवल अर्थहीन है, बल्कि हानिप्रद भी है। अपनी रुचि और अपने विचारों को अपने पुत्र पर थोपकर उसके व्यक्तित्व को नष्ट करने का प्रयत्न करना किसी भी पिता के लिए शोभनीय नहीं है, जब प्रसन्न को यह ज्ञात हो जाता है कि उसके पुत्र ज्ञानेंद्र का लगाव व्यापार के प्रति है, तब उसे चाहिए था कि वह किसी विश्वसनीय व्यापारी के साथ रखकर अपने बेटे को उचित प्रशिक्षण दिलाता। पिता की ओर से ऐसा कोई दायित्व न लेने के कारण ही अनुभवहीन ज्ञानेंद्र बुरे व्यसनों का शिकार बना और अन्त में अनिच्छा से ही अपनी रुचि के विरुद्ध उसे खेतीबारी में लगना पड़ा। इन सब बातों के पीछे प्रसन्न का अनुत्तर दायित्वपूर्ण व्यवहार ही मुख्य कारण है।"

राजा के इस प्रकार मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)

दूध का स्वाद

धवलपुरी के राजा सुवर्णवर्मा बड़े यशस्वी और न्यायप्रिय राजा था। एक बार उन्हें समाचार मिला कि नगर के समीपवर्ती वन में सूर्यदेव नाम के एक ऋषि एक छोटा-सा आश्रम बनाकर रहते हैं। वे न केवल महान तपस्वी, बल्कि महान ज्ञानी भी हैं। राजा सुवर्णवर्मा के मन में यह विचार आया कि इतने महान ऋषि के दर्शन अवश्य किये जायें और कम से कम एक दिन उनके सान्निध्य में रहा जाये। राजा ने अपने मंत्री शान्तिकर को ऋषि सूर्यदेव की आज्ञा लेने के लिए उनके पास भेजा।

मंत्री ने राजा सुवर्णवर्मा की ओर से सब निवेदन किया। ऋषि सूर्यदेव ने कहा, "मंत्रिवर, मैंने सुना है कि राजा सुवर्णवर्मा उत्तम शासक और न्यायशील हैं। उनके हृदय में मेरे आश्रम में एक दिन व्यतीत करने की इच्छा ने जन्म लिया है। इसका अर्थ है कि वे अत्यन्त धार्मिक भी हैं और उनके अन्दर आध्यात्मिक जिज्ञासा है। यदि ऐसा न होता तो वे अत्यन्त सुखदायक शय्या तथा ऐश्वर्यपूर्ण महल को छोड़कर मेरी कुटी में विश्राम करने की कामना न करते। आप उन्हें मेरा यह संदेश दीजियेगा कि मैं उन्हें यहाँ पधारने के लिए आमंत्रित कर रहा हूँ।"

सूर्यदेव ऋषि की बात सुनकर मंत्री शान्तिकर को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी समय एक आश्रमवासी शिष्य ने एक लोटे में दूध लाकर मंत्री को दिया। मंत्री को दूध का स्वाद असाधारण प्रतीत हुआ।

मंत्री ने उस शिष्य से कहा, "मैंने आज तक इतना स्वादिष्ट दूध नहीं पिया है। जिस गाय का यह दूध है, वह उत्तम नस्ल की होनी चाहिए। क्या यह बात ठीक है?"

"गाय की नस्ल के बारे में तो मैं नहीं जानता, पर इस गाय को हमारे गुरुदेव सबसे अधिक प्यार

रामचन्द्र शाह

करते हैं ।'' शिष्य ने कहा ।

मंत्री शान्तिकर कुछ समय आश्रम में बिताकर फिर राजधानी लौट आये । दूसरे दिन मंत्री के साथ राजा सुवर्णवर्मा ऋषि सूर्यदेव के दर्शन करने के लिए उनके आश्रम में गये । ऋषि ने राजा को आशीर्वाद देकर उनके बैठने के लिए एक कुशासन की ओर संकेत किया । इसके बाद उन्होंने एक शिष्य को बुलाकर राजा के लिए दूध लाने का आदेश दिया ।

शिष्य जब दूध लाने के लिए जाने लगा, तब मंत्री ने धीमे स्वर में उससे कहा, ''सुनो, तुम महाराज के लिए वही दूध लाना, जो कल मुझे दिया था, उसी गाय का दूध, जिसे तुम्हारे गुरुदेव अधिक प्यार करते हैं । ठीक है न!''

''जी हाँ, मैं उसी गाय का दूध लाऊँगा । हमारे गुरुदेव अतिथियों को हमेशा उसी गाय का दूध देने का आदेश देते हैं ।'' शिष्य ने कहा ।

इसके बाद शिष्य दो लोटों में दूध ले आया । उसने एक लोटा राजा को दिया और दूसरा लोटा मंत्री के हाथ में देते हुए बोला, ''महानुभाव, यह दूध उसी गाय का है, जिस गाय के बारे में आपने मुझसे कहा था ।''

मंत्री शान्तिकर ने दूध का घूँट भरा और मुँह सिकोड़ लिया, फिर शिष्य को अलग ले जाकर उससे पूछा, ''क्या सचमुच यह दूध उसी गाय का है? या तुमसे कोई भूल-चूक हो गयी है?''

''नहीं, भूल-चूक तो कोई नहीं हुई है । उसी दूध से दो लोटे भर कर एक लोटा महाराज को और दूसरा लोटा आपको दिया है ।'' शिष्य ने जवाब दिया ।

राजा ऋषि सूर्यदेव के मुख से धार्मिक और नैतिक उपदेश बड़े एकाग्रचित्त से सुन रहे थे। उन्होंने मंत्री और शिष्य की बात पर कोई ध्यान न देकर दूध पी लिया था और लोटा रख दिया था।

उपदेश के बाद ऋषि उठ खड़े हुए और किसी काम से भीतर के कक्ष में चले गये। एकांत पाकर मंत्री ने राजा से पूछा, "महाराज, आपको दूध का स्वाद कैसा लगा?"

"ओह, अद्‌भुत! अद्‌भुत! मैं क्या बताऊँ?" राजा ने अभिभूत होकर उत्तर दिया।

यह जवाब सुनकर मंत्री बोले, "प्रभु, कल मुझे भी दूध का स्वाद अद्‌भुत प्रतीत हुआ था। उस दूध को पीकर मेरे मन में यह इच्छा जाग्रत हुई थी कि उस गाय को ख़रीद लिया जाये। अगर ऋषि सूर्यदेव उस गाय का दाम एक सहस्र मुद्राएँ भी माँगते, तो भी मैं यह राशि सहर्ष देने के लिए तैयार था। पर बड़े आश्चर्य की बात है कि आज उसी गाय का दूध एकदम साधारण है।"

मंत्री शान्तिकर की बातें सुनकर राजा सुवर्णवर्मा क्षण भर को मौन रहे, फिर बड़े शान्तभाव से बोले, "मंत्रीवर, आपको कल दध का स्वाद इसलिए अद्‌भुत प्रतीत हुआ, क्योंकि आपके मन में ऋषि के प्रति कृतज्ञता का भाव था। पर कुछ ही देर बाद आप उस कृतज्ञभाव से बाहर निकल कर सौदेबाजी में लग गये। आपके अन्दर के स्वार्थ का ज़हरीला कीड़ा ऋषि के दयाभाव को भूलकर दूध का मूल्य मुद्राओं में आँकने लगा। ऐसी स्थिति में आज दूध का स्वाद अद्‌भुत कैसे रह सकता था?"

मंत्री शान्तिकर ने लज्जित होकर सिर झुका लिया।

राजा सुवर्णवर्मा ने गंभीर होकर कहा, "मैं महर्षि सूर्यदेव के चरणों में एक दिन शान्तिपूर्वक बिताने के लिए आया हूँ। दूध का स्वाद अथवा लाभ-हानि का विचार करने के लिए नहीं। आप मुझे यहाँ अकेले छोड़कर वापस धवलपुरी लौट जाइये!"

मंत्री शान्तिकर को राजा की आज्ञा का पालन करना पड़ा। कुछ देर बाद ऋषि सूर्यदेव अत्यन्त प्रसन्नभाव से मन्द-मन्द मुस्कराते हुए राजा सुवर्णवर्मा के पास पहुँचे।
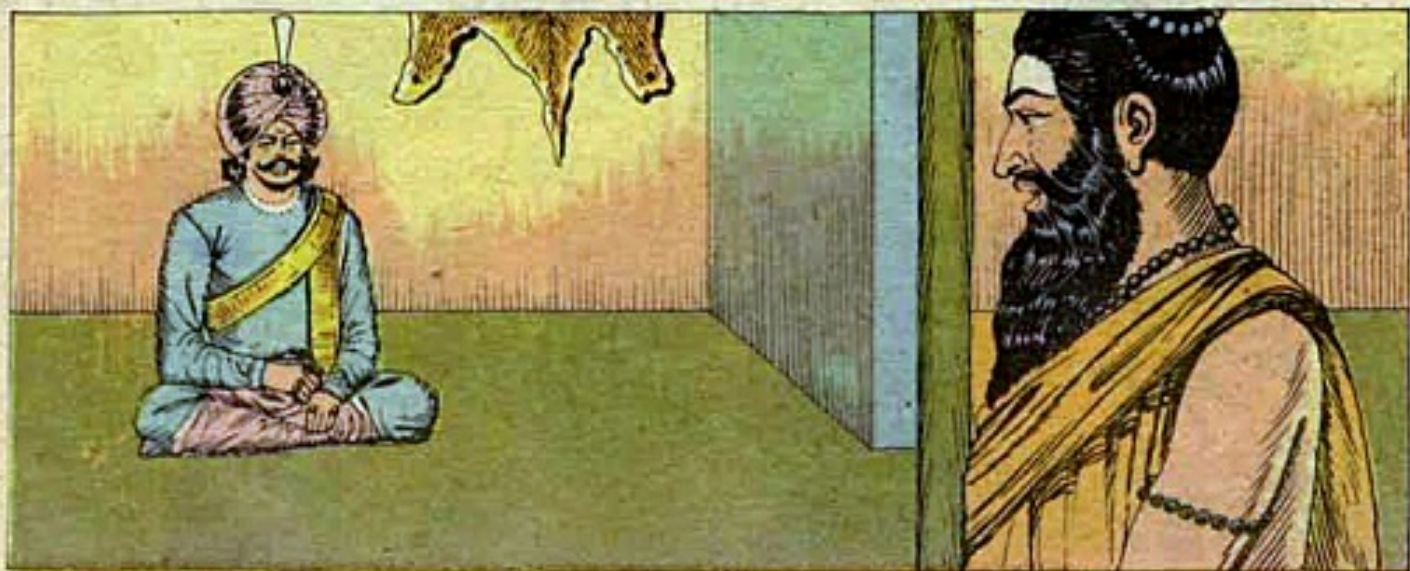
कामाक्षी मन्दिर

"जगदम्बा कामाक्षी के नाम पर आज्ञा देता हूँ, तुम ऐसा करो!" कहकर अनेक मांत्रिक एवं तांत्रिक अपनी विद्याओं का प्रदर्शन किया करते हैं। असम में गौहाटी नगर के समीप नील पर्वत पर विराजमान कामाक्षी देवी अपने भक्तों को मंत्रशक्ति एवं तंत्रशक्ति प्रदान किया करती हैं। यह विशवास बहुत प्राचीनकाल से चला आ रहा है।

भक्तों का विश्वास है कि दक्षयज्ञ के उपरान्त भगवान शिव जब सती के शव को कंधे पर डालकर समस्त पृथ्वी का चक्कर लगा रहे थे, तब इस पर्वत पर सतीदेवी का एक अंग गिर गया था। उसी स्थान पर इस मन्दिर का निर्माण किया गया है। पहले यह मन्दिर एक घने वन के बीच अवस्थित था। इस कारण साधारण प्रजा को वहाँ तक पहुँचने में बड़ी कठिनाई होती थी।

सोलहवीं शताब्दी में काला पहाड़ सैनिकों ने इस मन्दिर को ध्वस्त कर दिया। उन सैनिकों ने मन्दिर को अकस्मात् घेर कर उस पर आक्रमण कर दिया। क्षेत्रीय राजा इस मन्दिर की रक्षा नहीं कर पाये। इस घटना के बाद अनेक वर्षों तक कोई इक्का-दुक्का पुजारी ही इस मन्दिर में रहा करता था। यात्रियों के न आने से यह मन्दिर प्रायः निर्जन ही रहता था।

कुछ समय बाद असम के राजा मल्लदेव ने बंगाल के नवाब पर आक्रमण कर दिया। पर वह युद्ध में पराजित होगये। नवाब ने उन्हें बन्दी बनाकर दुर्ग में रख दिया।

एक दिन की बात है, राजा मल्लदेव गहरी निद्रा में थे। उन्होंने एक सपने में देवी के दर्शन किया। देवी ने राजा से पूछा, "राजन, यह कैसी अवज्ञा है? तुम्हारे राज्य की सीमा पर ही तुम्हारे राज्य की अधिष्ठात्री देवी का मन्दिर ध्वस्त पड़ा है। तुमने उसकी कोई देखभाल नहीं की और उलटे युद्ध में लगे हुए हो। तुमने पड़ोसी राज्य पर आक्रमण किया और आज बन्दी होकर पड़े हुए हो?"

राजा की आँखें खुल गयीं और उन्होंने अपनी भूल को समझ लिया। देवी ने उन्हें दुर्ग से बाहर निकलने के उपाय का निर्देश भी किया। उसी सुबह नवाब की माँ को उद्यान में भ्रमण करते समय साँप ने डँस लिया। वे बेहोश होकर गिर पड़ीं।

वैद्यों ने नवाब की माँ की रक्षा करने का पूरा प्रयत्न किया, पर उनकी दशा में कोई सुधार न हुआ। नवाब को अपनी माँ से अगाध प्रेम था। वह अपनी माँ की चिन्ता जनक हालत देखकर दुख से भर गया।

जब वैद्य सब प्रकार के प्रयत्न करके हार गये, तब नवाब ने अपने दरबार में यह घोषणा की, "जो व्यक्ति मेरी माँ की रक्षा करेगा, उसे मुँह माँगा इनाम दिया जायेगा।" लेकिन दरबारियों में से एक भी व्यक्ति आगे न आया।

कारागार में बन्दी बने राजा ने संतरी से कहा, "तुम अपने नवाब से कह दो, अगर नवाब मुझे कारागार से मुक्त कर दें तो मैं उनकी माँ के प्राण बचा सकता हूँ।" इस प्रकार राजा मल्लदेव ने नवाब के पास ख़बर भिजवा दी। नवाब ने राजा की शर्त मानकर उन्हें राजमहल में बुलवाया।

कामाक्षी देवी ने राजा को स्वप्न में एक मंत्र का उपदेश दिया था। राजा ने उस मंत्र का उच्चारण किया। फिर क्या था, नवाब की माँ इस तरह उठकर बैठ गयीं, मानो वे अभी नींद से उठी हों। नवाब के आनन्द की सीमा न रही। उसने राजा मल्लदेव का आलिंगन किया और अनेक मूल्यवान पुरस्कार देकर राजा को आदरपूर्वक विदा किया।

राजा मल्लदेव ने अपनी राजधानी लौटकर मक्खन से जलायी गयी अग्नि में ईंटें बनवाकर कामाक्षी देवी के मन्दिर के पुनर्निर्माण का संकल्प किया। अल्प काल में ही मन्दिर के पुनर्निर्माण का कार्य पूरा हो गया। वे जीवन-पर्यन्त देवी के परम भक्त बने रहे। मन्दिर में पूजा-आराधन की समुचित व्यवस्था की गयी।

मन्दिर की समुचित व्यवस्था हो जाने के बाद भक्तों का आवागमन आरंभ हो गया। इस मन्दिर के गर्भगृह में एक काली शिला देवी की प्रतिमा की प्रतीक है। मन्दिर का प्रांगण जीवन्त कला से परिपूर्ण है। कामाक्षी देवी का मन्दिर एक सिद्ध स्थान है।

राजधर्म

लवंगपुर के राजा शांतगुप्त बड़े ही धर्मनिष्ठ थे। वे धर्मसम्बन्धी आचारों का पालन स्वयं तो किया ही करते थे, पर यह भी चाहते थे कि उनकी प्रजा भी धर्म की अवज्ञा न करे। मुख्यतः साधु एवं संन्यासियों के प्रति उनकी अपार श्रद्धा-भक्ति थी। उनका विश्वास था कि ये लोग साक्षात् ईश्वर के प्रतिनिधि होते हैं। उन्होंने कानून बनाया कि सारे राज्य की प्रजा एवं कर्मचारियों का भी यह कर्त्तव्य है कि उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न होने दे और हर तरह से उनकी सहायता करे। राजा शांतगुप्त इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने सारे राज्य में साधु-संन्यासियों के लिए सदाव्रत खुलवा दिये और उनके खाने-ठहरने के लिए अनेक धर्मगृहों का निर्माण करा दिया।

इस घटना को अभी कुछ ही दिन बीते थे कि एक दिन मंत्री माधववर्मा ने राजा शांतगुप्त से कहा, "महाराज, आपने साधु-संन्यासियों के बारे में जो नियम लागू किये हैं, उनके कारण हमारे राज कोष का अधिकांश धन उन्हीं के ऊपर खर्च हो रहा है। इस कारण जनता के कल्याण के लिए किये जानेवाले विकास-कार्यों पर अमल करने में बाधा उपस्थित हो रही है। एक और विशेष बात यह है कि साधु-संन्यासियों के लिए दी गयी छूट के कारण अपराधों की संख्या बढ़ गयी है।"

राजा शांतगुप्त ने मंत्री माधववर्मा की बातों को बड़ी अन्यमनस्कता से सुना, फिर सिर हिलाकर कहा, "मैंने साधुपुरुषों की रक्षा और कुशलक्षेम के लिए जो नियम लागू किया है, उसे ही आप बिगड़ी हुई स्थितियों का कारण बता रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि हम भगवतस्वरूप साधु-महात्माओं की उपेक्षा करें, पर मंत्रिवर, मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि साधु-सेवा से हमारे राज्य का निश्चय ही कल्याण होगा।"

सरला जैन

मंत्री थोड़ी देर मौन रहकर बोला, "महाराज, राज्य की वास्तविक स्थितियों के बारे में सारा विवरण प्रस्तुत करना मेरा कर्त्तव्य है न?"

राजा ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाकर कहा, "मंत्रिवर, हमारे राजगुरु लगभग एक वर्ष से तीर्थाटन पर हैं। इसलिए मुझे कानून बनाने से पहले उन की सम्मति लेने का अवसर नहीं मिला। आप इस आशय का एक ढिंढोरा पिटवा दीजिये कि "सारी प्रजा श्रमपूर्वक अपना जीवन बितायें! समय पर राजकर चुका दें। और अगर कोई अकर्मण्य अथवा आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करता दिखाई दिया तो उसे दण्डित किया जायेगा।" मंत्रिवर, अगर इस आदेश को कड़ाई के साथ पालन करवा सके तो मेरा विचार है कि हमारा कोशागार शीघ्र ही भर जायेगा।"

मंत्री ने राजा के आदेशानुसार सारे राज्य में ढिंढोरा पिटवा दिया।

कुछ समय बाद राजा शांतगुप्त ने मंत्री माधववर्मा को बुलाकर पूछा, "मंत्री, इस समय राजकोश किस स्थिति में है? राज्य में राजादेश का पालन भलीभाँति हो रहा है अथवा नहीं?"

मंत्री ने सविनय उत्तर दिया, "महाराज, मैं आपसे क्या निवेदव करूँ? कोशागार की स्थिति पहले से कहीं बदतर है।"

यह उत्तर सुनकर राजा शांतगुप्त को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बोले, "इससे यह विदित होता है कि प्रजा मेरे आदेशों का पालन नहीं कर रही है। हमें यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि आखिर ऐसा क्यों होता है? आज ही हम छद्मवेश धारण कर देशाटन पर निकलेंगे। आप तुरन्त व्यवस्था कीजिये!"

इसके बाद राजा शांतगुप्त एवं मंत्री माधववर्मा जब एक गाँव में पहुँचे, उन्होंने देखा कि एक जुलाहे के घर में कुछ लोग करघे के चारों तरफ़ बैठकर बतकही कर रहे हैं।

राजा और मंत्री उनके पास जाकर बोले, "हमने सुना है कि जो लोग काम-धंधा न करके आलस्यपूर्ण जीवन बिताते हैं, उन्हें इस देश का राजा कठिन दंड देता है। ऐसा लगता है कि तुम लोग राजा के उपदेश की उपेक्षा कर रहे हो?"

उनकी बात सुनकर करघे के चारों तरफ़ बैठे हुए लोग ठहाका मारकर हँस पड़े और बोले,

"ऐसा मालूम होता है कि आप लोग परदेश से आये हैं!" इसके बाद उन लोगों ने राजा और मंत्री को दीवार पर लटक रहे दण्ड, कमण्डलु एवं गेरुए वस्त्रों को दिखाकर कहा, "अगर कोई हमें राज्यादेश के उल्लंघ न के आरोप में बन्दी बनाना चाहे तो हम लोग कुछ ही क्षणों में साधु-स ंन्यासियों का वेश धारण कर लेंगे। यह बात सही है कि हमारे राजा अकर्मण्य लोगों को दंड देते हैं, पर साधु-संयासियों के लिए उनका यह कानून लागू नहीं होता। इतना ही नहीं है, साधु-संन्यासियों के वेश में कोई भी अपराध करके हम न केवल बच जाते हैं, बल्कि राजकर्मचारी हमारा समुचित सत्कार भी करते हैं।"

"ओह, ऐसा है!" यह कहकर राजा और मंत्री वहाँ से निकल पड़े।

इसके बाद राजा शांतगुप्त और मंत्री माधववर्मा ने उस देश के अनेक इलाकों का भ्रमण किया। प्रायः सभी स्थानों पर उन्हें ऐसे ही अनुभव हुए।

कुछ समय बाद राजा शांतगुप्त अपने मंत्री के साथ राजधानी में लौट आये। राजा यह सोचकर चिंता में डूब गये कि उन्होंने प्रजा के हित को दृष्टि में रखकर जो कानून बनाया, वह इस प्रकार निरर्थक साबित क्यों हुआ? उसी समय राजा को समाचार मिला कि राजगुरु देशाटन से लौट आये हैं। राजा शांतगुप्त मंत्री माधववर्मा के साथ उनके दर्शन करने गये।

राजगुरु धर्मदेव ने राजा शांतगुप्त के मुँह से सारा वृत्तान्त सुना। फिर उन्हें समझाकर कहा,
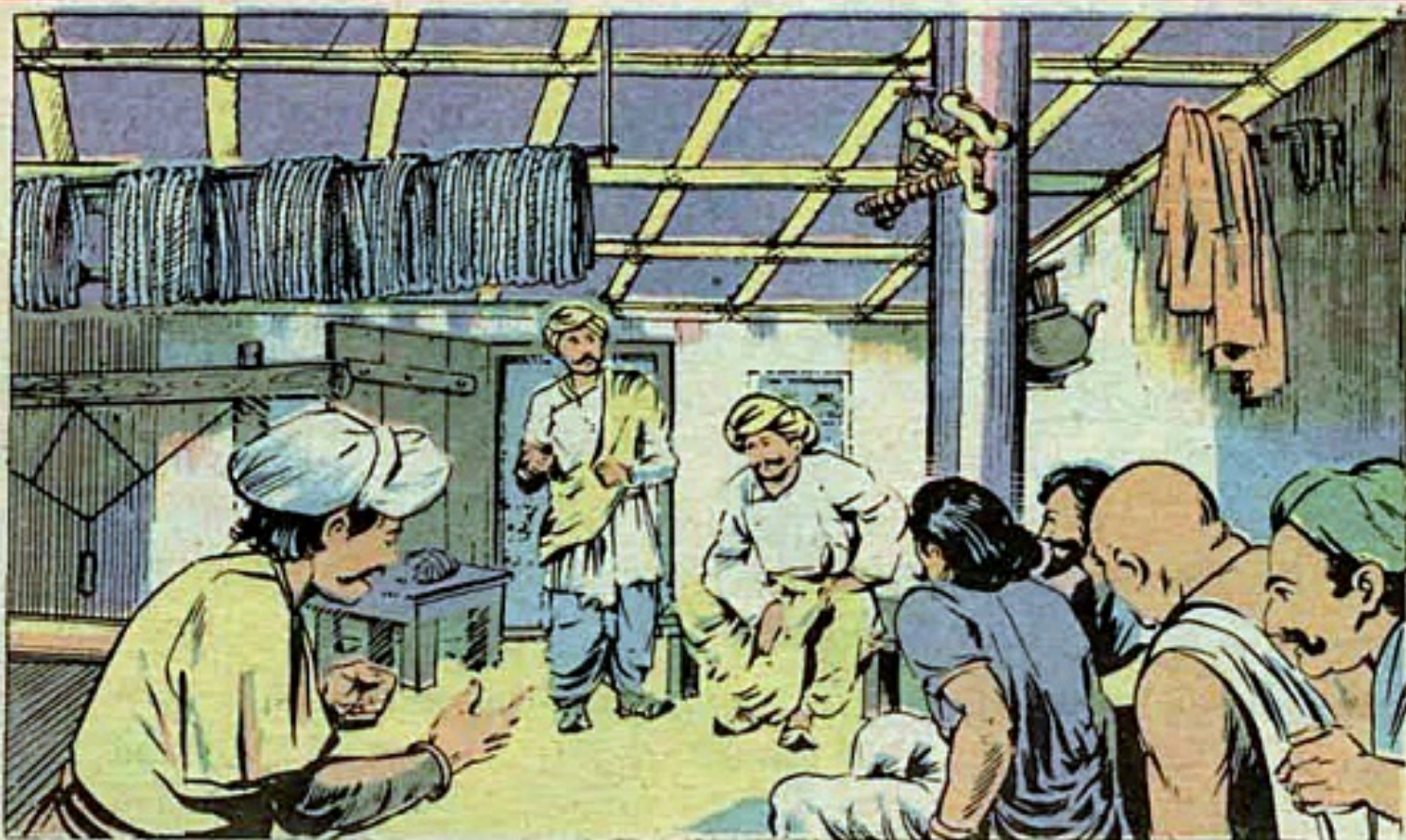
"राजन, किसी लक्ष्य अथवा आदर्श के बिना भावुकतापूर्ण ढंग से जो कानून बनाये जाते हैं, वे राजा एवं प्रजा दोनों के लिए ही हानिकारक सिद्ध होते हैं। प्रजाओं से हम यह आशा नहीं कर सकते कि वह लोक-कल्याण में तुरन्त अग्रसर हो जाये। उसे हम सिखाना पड़ता है, प्रशिक्षण देना पड़ता है। जहाँ तक उन महापुरुषों का प्रश्न है जो सहज ही सब स्वार्थों से दूर होते हैं और सर्वस्व-त्याग के लिए तत्पर रहते हैं तो उनकी संख्या तो उंगलियों पर गिनी जा सकती है।"

"गुरुदेव, हम लोग प्रतिदिन अनेक साधु-संन्यासियों को देखते हैं, फ़िर उनकी संख्या अल्प कैसे हुई?" राजा ने पूछा।

राजा का प्रश्न सुनकर राजगुरु धर्मदेव के मुख पर हास छागया। उन्होंने कहा, "संख्या में अनेक भले ही हो, पर उनमें से सरल, सच्चे साधुओं को अलग निकाल लेना कोई आसान काम नहीं है। गेरुए वस्त्रधारी लोगों में ऐसे अनेक लोग हैं जो परिवार के प्रति अपने दायित्वों से बचने के लिए साधु बन गये हैं, ताकि वे सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें। साधु-संन्यासियों के लिए बनाया गया आपका सुखद कानून ऐसे लोगों को प्रोत्साहन देता है। वही प्रजा में अकर्मणयता एवं अराजकता पैदा करता है।"

राजा ने सविनय कहा, "गुरुदेव, आप यह चाहते हैं कि इस अर्थहीन नियम को रद्द कर दिया जाये! तो मैं इस कानून को आज ही रद्द करने का का आदेश देता हूँ।"

"राजन, आप यह काम जितनी शीघ्रता से कर देंगे, उतना ही श्रेष्ठ है। आप एक बात और याद रखिये—आपके जो धार्मिक विश्वास हैं, उन्हें आप प्रजाओं पर आरोपित करने का प्रयत्न मत कीजिये। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसे कानून बनाकर नहीं थोपा जा सकता।" राजगुरु बोले।

राजा शांतगुप्त ने साधु-संन्यासियों के लिए विशेष सुविधाएँ प्रदान करने वाली संस्थाओं को रद्द कर दिया। इसके बाद अकर्मणय लोगों के लिए विशेष दंड-विधान बनाकर उसे राज्य में लागू किया। कुछ ही दिनों में राज्य में शांति छा गयी तथा राजकोश भी धन से पूर्ण हो गया।

उत्तर रामायण

यमराज के साथ युद्ध करने के लिए जाकर रावण ने यमलोक में नरकयातनाएँ झेलने वाले पापियों तथा स्वर्ग सुख भोगनेवाले पुण्यात्माओं को देखा ।

क्रूर व भयंकर प्रतीत लगनेवाले यमकिंकर पापियों को कीड़े व मकड़ों का आहार बना रहे हैं। कुत्तों से कटवा रहे हैं। वैतरणी नदी में तैरवा रहे हैं। रेत के जलते टीलों पर लिटा कर सता रहे हैं, ऐसी नरकयातनाएँ झेलनेवाले लोग शवों की भांति पड़े रह कर पीड़ा, व प्यास के मारे छटपटा रहे हैं! दूसरी ओर पुण्यात्मा पुण्य का फल समस्त प्रकार के सुखों के रूप में भोग रहे हैं ।

लाखों की संख्या में स्थित पापी जो यातनाएँ झेल रहे थे, उन्हें देख रावण द्रवीभूत हुआ और उन को मुक्त कराने लगा। इसे देख यमदूत क्रोध में आ गये। उन लोगों ने रावण के पुष्पक विमान पर शूल, मूसल, तोमर आदि आयुधों के साथ हमला बोल दिया। कुछ लोग मायावी वेष धरकर शहद की मक्खियों की भाँति चारों तरफ़ फैलकर विमान के भीतर के आसन, वेदी व मण्डपों को तोड़कर फेंकने लगे। लेकिन वह विमान अक्षय था, इसलिए उन दूतों के द्वारा तोड़-फोड़ करने पर भी वह यथा प्रकार अक्षुण्ण रहा ।

इस बीच नारदमुनि सीधे यमराज के पास पहुँचे। यमराज ने अर्घ्य व पाद्य के द्वारा उनका सत्कार किया, कुशल-क्षेम के पश्चात नारद के आगमन का कारण पूछा ।

"यमराज, दशग्रीव नामक अजेय राक्षस आप को पराजित करने के विचार से आप पर हमला

करने आ रहा है। अब आप के यमदण्ड की परीक्षा होनेवाली है! दशग्रीव का विचार है कि तीनों लोकों में उसको पराजित कर सकने वाले देव, दानव व मानव नहीं हैं। इसी अंहकार से ग्रसित होकर वह दिग्विजय करने निकल पड़ा है। अब यह देखना है कि उसके इस विचार में कहाँ तक सचाई है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि वह समझाने-बुझाने से नहीं मानेगा। फिर आप जाने और अपना निर्णय। पर यह मामला कुछ पेचीदा सा लगता है। इसलिए आप सावधान रहिए। मैंने सुना है कि दशग्रीव असाधारण साहसी व पराक्रमी है और वह अपने निर्णय पर सदा दृढ़ रहा करता है।" नारद ने उत्तर दिया। उसी समय दूर पर जगमगाता हुआ पुष्पक विमान दिखाई दिया।

उधर रावण ने थोड़ी देर यमकिंकरों के साथ युद्ध करके अन्त में उन पर पाशुपतास्त्र का प्रयोग किया। वह दावानल की तरह उस प्रदेश के पेड़-पौधों को भस्म करते हुए अपनी ज्वालाओं को चारों तरफ़ फैलाता गया। इस पर यमदूत उन ज्वालाओं में पतंगों की भांति जलकर भस्म हो गये। इस पर प्रसन्न हो रावण तथा उसके मंत्री इस प्रकार अट्टहास कर उठे कि सारी दिशाएँ गूँज उठीं। इस प्रथम विजय में ही रावण और उस के मंत्रियों ने यह अन्दाजा लगाया कि जब उनके अस्त्रों की अग्नि में सारे यमदूत कीडों की भाँति भस्म हो रहे हैं तो यमराज के अन्य दूतों तथा यमराज को भी पराजित करना कोई बड़ी बात नहीं है। इस विचार से उन लोगों का हौसला बढ़ गया और विजय की खुशी में वे बराबर अट्टहास करने लगे।

यह अट्टहास सुनकर यमराज ने समझ लिया कि रावण की जीत हो गई है। इस पर उन्होंने अपने सारथी को बुला कर युद्ध के लिए अपने रथ को तैयार रखने का आदेश दिया। कुछ ही क्षणों में लाल अश्व जुता हुआ रथ आकर उनके सामने खड़ा हुआ। मृत्यु देवी यमपाश व मुद्‌गर धारण कर रथ में यमराज के आगे खड़ी हो गई। यमराज रथ पर सवार हुए, उनके एक ओर काल दण्ड और दूसरी ओर काल पाश थे। इस प्रकार यमराज को युद्ध के लिए प्रस्थान करते देख तीनों लोकों में एक दम खलबली मच गई, और देवता

Sankar
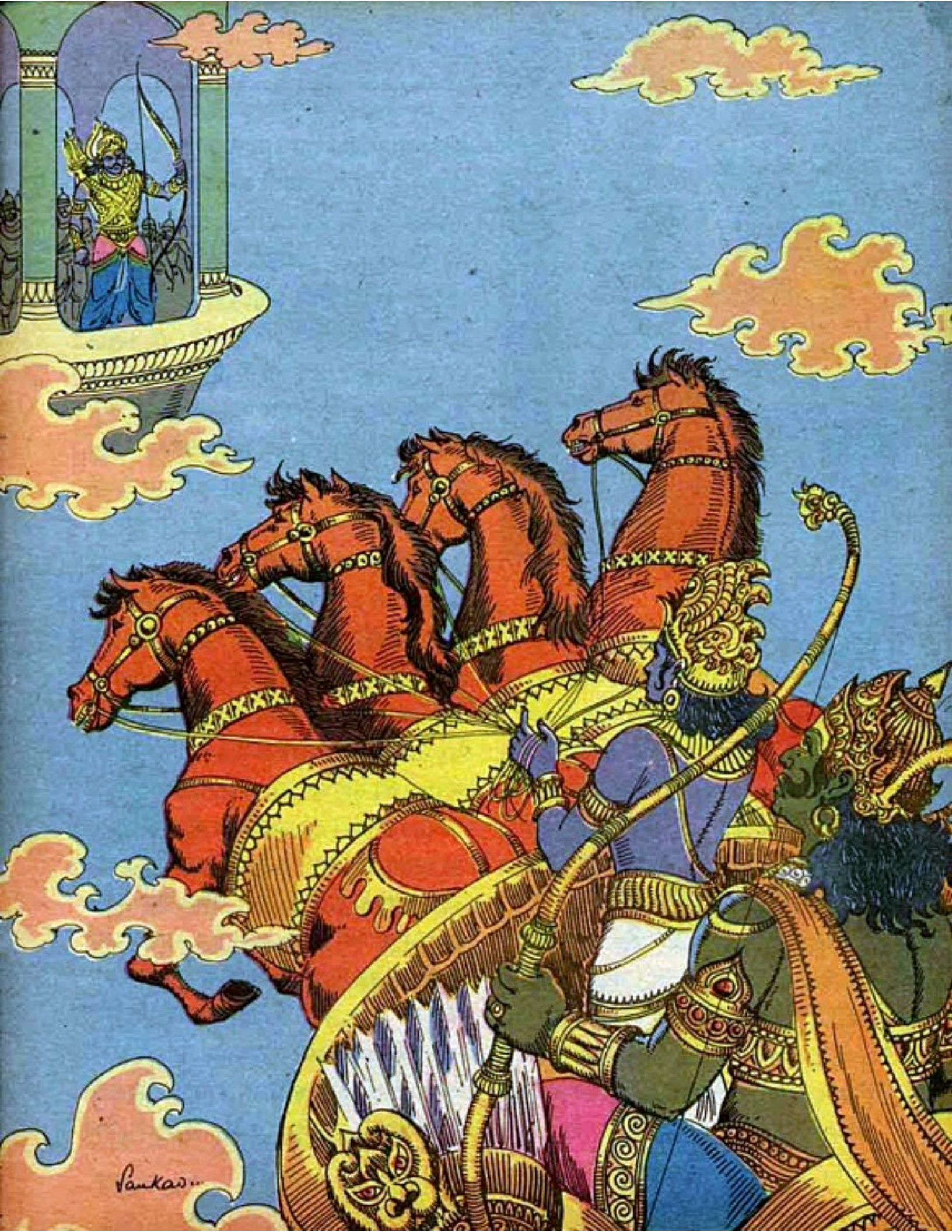
कांप उठे ।

मनोवेग से दौड़नेवाले अश्व यमराज के रथ को कुछ ही क्षणों में रावण के सामने ले आये। मृत्यु देवता के साथ अत्यन्त भयानक प्रतीत होनेवाले यमराज के रथ को देखते ही रावण के मंत्री भयभीत हो चारों दिशाओं में भाग गये। पर रावण थोड़ा भी विचलित हुए विना ही वहीं निडर स्थिर खड़ा रहा ।

इसके बाद यमराज और रावण के बीच सात रातों तक भयंकर युद्ध हुआ । यमराज ने अपने अस्त्रों के द्वारा रावण को तीव्र घायल बनाया। पर रावण हारा नहीं । बल्कि उसने अपने बाणों से यमराज, मृत्यु देवता तथा सारथी को भी खूब सताया ।

इसे देख मृत्यु ने यमराज से कहा— "यमधर्मराज, इस राक्षस के साथ मुझे युद्ध करने दो। मैं इस को पलभर में मार डालूँगा। मारना मेरा हक़ है। मैंने कई राक्षसों का संहार देखा है। यह भी देखा है— प्रलय काल में सारे जगत सर्वनाश को प्राप्त हो जाते हैं। यह मेरे सामने किस खेत की मूली है?"

"तुम देखती रह जाओ, मैं इसको मार डालता हूँ।" यह कहकर यमराज ने कालदण्ड उठाया। वह ज्वालाएँ बिखेरता हुआ अत्यन्त भयंकर प्रतीत हुआ। उस समय यमराज उसे रावण पर फेंकने को हुए। तभी ब्रह्मा ने प्रत्यक्ष हो कर कहा— "यमराज, इस दण्ड का प्रयोग न करो। इस दण्ड के प्रयोग से अगर रावण की मृत्यु हो जाती है, तो मैं ने इसको जो वर दिया है, वह झूठा साबित होगा। यदि उस की मृत्यु नहीं हो जाती, तो मैं ने जिस उद्देश्य से इस काल दण्ड की सृष्टि की है, वह असत्य प्रमाणित होता है। ब्रहुत समय पूर्व मैंने इस की सृष्टि मृत्यु के समान अमोघ बना कर की थी। इसलिए तुम काल दण्ड का प्रयोग रावण पर करोगे, तो किसी न किसी रूप में मेरी बात व्यर्थ साबित होगी। काल दण्ड एक विशेष प्रयोजन के लिए सृजित हुआ है। उसका प्रयोग करने पर वह निश्चय ही प्राणों का हरण करेगा, चाहे वह महान पराक्रमी, भक्त या राजा-महाराजा क्यों न हो? वह अपने कर्तव्य एवं धर्म का पालन करेगा ही। इस संदर्भ में उसका प्रयोग रावण पर करना उचित नहीं है। प्रत्येक स्थिति के लिए

कार्य-कारण सम्बन्ध होता है ।"

ब्रह्मा की बात मानकर यमराज ने कालदण्ड को अलग रख दिया। उनकी समझ में नहीं आया कि यदि रावण का संहार करने के लिए उसके सामने कोई मार्ग नहीं है, तो वह युद्ध क्षेत्र में जाकर करे क्या? यही सोचकर यमराज रथ के साथ अंतर्धान होकर ब्रह्मा के साथ स्वर्ग में चले गये ।

रावण ने यमराज को पराजित करने की घोषणा की, पर यमराज की तरफ़ से उस की कोई प्रति क्रिया नहीं दिखाई दी। इस पर रावण और उसके मंत्रियों की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। विजय गर्व के साथ तब वह पुष्पक विमान में यमपुरी में पहुँचा । इस दृश्य को देख नारदमुनि परम आनंदित हुए ।

यमराज को पराजित कर मारीच इत्यादि मंत्रियों की प्रशंसा प्राप्त करके रावण पुष्पक विमान में पाताल लोक के लिए निकल पड़ा । सबसे पहले वरुण के शासन में स्थित समुद्र में प्रवेश किया, वासुकी इत्यादि नागों के निवासवाले भोगवती नगर पर अधिकार कर लिया, फिर निवात और कवच वाले मणिमती नगर पहुँचा। वहाँ पर विभिन्न अस्त्र-शस्त्र रखनेवाले अजेय निवात व कवच रावण के साथ युद्ध के लिए सन्नद्ध हुए और पूरी तैयारी के साथ रावण पर जूझ पड़े ।

एक वर्ष तक निरन्तर युद्ध चलता रहा, पर विजय-पराजय का निर्णय न हो पाया । इस पर ब्रह्मा विमान पर वहाँ पहुँचे, और उन्होंने दोनों पक्षों के बीच समझौता किया, फिर अग्नि को साक्षी बनाकर उनके बीच मैत्री स्थापित करके चले गये। इसके बाद एक वर्ष तक रावण निवात और कवच का अतिथि बना रहा। वहाँ पर अपना समय इस प्रकार सुख पूर्वक बिताया, जैसे उसके निजी नगर में बिताता था । इस बीच निवात व कवच से रावण ने माया से संबन्धित ऐसी निन्यानवें विद्याएँ सीखीं, जिन्हें वह नहीं जानता था, फिर वह वरुण के नगर की खोज में निकल पड़ा ।

इस मार्ग में कालकेय निवासवाला अश्म नगर पड़ा। वहाँ पर रावण और कालकेय के बीच युद्ध हुआ। उस युद्ध में रावण ने अनेक कालकेय वीरों का संहार किया। उन वीरों में विद्युज्जिह्व भी

था जो शूर्पणखा का पति था। वह अपने बल का अंहकार रखता था। बिजली की भाँति अपनी जिह्वा को फैला कर राक्षसों को चाट जाता था। उसका नाम सुनकर असाधारण वीर भी थर थर कांप उठते थे, इसलिए उसके सामने जाने से डरते थे। लेकिन ऐसे अजेय वीर का रावण ने अपनी तलवार से उसका वध किया। इस संग्राम में कुल चार सौ कालकेय वीर रावण के हाथों में मारे गये।

वहाँ से निकल कर रावण वरुण के महल में आया। वह महल शुभ्र मेघ खण्ड तथा कैलास जैसा प्रतीत हो रहा था। वहाँ पर प्रति क्षण दूध की धाराएँ बहानेवाली सुरभि नामक कामधेनु रावण को दिखाई दी। उसी के दूध से क्षीर सागर का निर्माण हुआ था।

उसी क्षीर सागर से चंद्रमा का आविर्भाव हुआ। अमृत पैदा हुआ। क्षीर सागर के फेन को आहार बना कर कुछ महर्षि जीवित रहते हैं। शिवजी का वाहन बना नंदी कामधेनु से ही उत्पन्न हुआ है।

उस कामधेनु की प्रदक्षिणा करके रावण वरुण के महल के समीप पहुँचा। वरुण के योद्धाओं ने रावण के साथ युद्ध किया। रावण ने उन योद्धाओं के नायकों का संहार किया, फिर उन वीरों से कहा— "तुम लोग वरुण के पास जाकर कह दो कि रावण उन के साथ युद्ध करने आया है।"

वरुण के पुत्र और पौत्र अपने दलों के साथ रथों पर सवार हो रावण का सामना करने आये, लेकिन कुछ ही क्षणों में वे सब रावण और उसके मंत्रियों के हाथों में पराजित हो गये। अपने दलों के नष्ट हो जाने के बाद वरुण के पुत्रों ने वीरतापूर्वक युद्ध किया, लेकिन वे भी हार गये। इस के बाद रावण ने वरुण को युद्ध के लिए ललकारते हुए उसके पास संदेशा भेजा, तो उसे समाचार मिला कि वरुण अपने महल में नहीं है, संगीत सुनने के लिए ब्रह्मलोक में गये हुए हैं!

इस पर रावण ने अपनी विजय की घोषणा की और पुष्पक पर सवार हो पुनः अश्म नगर को लौट आया। वहाँ पर वह उन्मत्त हो विहार कर रहा था। तब उसको वहाँ पर एक अद्भुत भवन दिखाई दिया। उस के अलंकार स्वरूप वैढूर्य तोरण, मोतियों के झालर, स्वर्ण-स्तम्भ, व स्फटिक सोपान थे।

उस महल को देख रावण विस्मय में आ गया। क्यों कि उसने ऐसी अद्भुत कारीगरी और बहुमूल्य रत्न जड़ित अपूर्व महल को कहीं नहीं देखा था। फिर उसके मन में उस महल पर अधिकार करने का विचार आया। वह अपने लोभ का संवरण नहीं कर पाया। तब रावण ने प्रहस्त को आदेश दिया— "तुम इस महल के मालिक का पता लगाओ।"

प्रहस्त उस महल का प्रथम प्राकार पारकर भीतर गया, पर उसे वहाँ पर कोई नहीं दिखाई दिया। इसी प्रकार जब वह सात प्राकार पार करके उस भवन के अन्दर पहुँचा तो उसे एक ज्वाला दिखाई दी। उसके मध्य एक दिव्य पुरुष था। वह सूर्य की भांति दमकते अपने तेज से प्रेक्षकों को अपनी ओर देखने नहीं दे रहा था। वह महापुरुष प्रहस्त को देख प्रसन्नता के मारे हँस पड़ा। उस हँसी को सुन कर प्रहस्त का शरीर पुलकित हो उठा। वह तुरंत रावण के पास लौट आया और सारा समाचार सुनाया।

यह समाचार पाकर रावण पुष्पक विमान से उतर पड़ा और उस भवन के भीतर प्रवेश करने लगा। तब उस भवन के मुख द्वार को पूर्ण रूप से छाकर खड़ा हुआ एक भयंकर आकृतिवाला सामने आया।

उस आकृति के सिर पर चंद्रमा था। उस के मुँह से भयंकर ज्वालाएँ फूट रही थीं। उसकी आँखें व ओंठ लाल थे, पर उसका मुख गोरा था। केश बिखरे थे, घनी मूँछें, व दाढ़ी थीं, बड़े-बड़े जबड़े थे। हाथ में भारी गदा थी। उस भयंकर रूप को देखते ही रावण का शरीर कांप उठा। उस आकृति ने रावण को देख कर कहा— "हे राक्षस, डरो मत! बताओ, तुम क्या चाहते हो?"

"मैं युद्ध करना चाहता हूँ।" राक्षस ने कहा।

"तुम किसके साथ युद्ध करोगे? बताओ, मेरे साथ या बलि के साथ?" भयंकर आकृति ने पूछा।

"मैं इस महल के मालिक के साथ युद्ध करना चाहता हूँ। या तुम जिसके साथ युद्ध करने को कहोगे, मैं उसी के साथ युद्ध करूँगा। मैं दिग्विजय करने निकला हूँ। समस्त वीरों को पराजित करके ही मैं अपनी राजधानी को लौटूँगा,

आप चिंता न कीजिए। शायद यह सोच कर मेरे प्रति सहानुभूति दिखाना चाहते होंगे कि मैं युद्ध में हार जाऊँगा। बताइये, वे कहाँ पर हैं?" रावण ने उत्तर दिया।

"बलि महल के अन्दर है। तुम चाहो तो उस महामह के साथ निर्विघ्न युद्ध कर सकते हो!" भयंकर आकृति ने सलाह दी।

रावण भीतर पहुँचा, मगर सूर्य की भांति प्रज्वलित होनेवाले बलि की ओर आँख उठाकर नहीं देख पाया। पर बलि ने रावण को सरलता के सात उठाकर अपनी जांघ पर बिठा लिया और कहा— "मैं तुम्हारी इच्छा की पूर्ति करूँगा।"

"महानुभाव, वैसे बात कुछ ख़ास नहीं है। मैं ने सुना है कि बहुत समय पूर्व विष्णु ने आप को धोखा देकर बन्दी बनाया है, मैं आपको मुक्त करने की शक्ति रखता हूँ। इसीलिए मैं यही कार्य संपन्न करने के विचार से यहाँ आया हूँ।" रावण ने विनयपूर्वक कहा।

"ओह, यह बात है। तब तो तुम्हें एक समाचार सुनाना चाहता हूँ। देखो, वहाँ पर पड़े हुए कुण्डल को उठा लाओ।" बलि ने कहा।

रावण ने उस कुण्डल के समीप जाकर देखा, वह एक भारी चक्र के बराबर था। रावण बड़ी आसानी से उसे उठाने को हुआ, लेकिन अपमानित हुआ। वह थोड़ा भी नहीं हिला। इस पर रावण ने अपनी पूरी शक्ति लगा कर दोनों हाथों से उठाना चाहा, किंतु वह उसे जरा भी हिला नहीं पाया।

इसे देख बलि ने रावण को समीप बुलाकर समझाया—"तुम जिस कुण्डल को हिला नहीं सके, वह हमारे पूर्वज हिरण्य कश्यपु के काल में धारण किया हुआ एक कुण्डल है। उन्होंने ऐसा वर प्राप्त किया था कि किसी के भी हाथों में उसकी मृत्यु न होगी, पर अन्त में नृसिंह रूपधारी विष्णु के हाथों में मृत्यु को प्राप्त हुए। उसी विष्णु को तुमने द्वार के पास देखा है। वे सदा वहीं पर रहा करते हैं।"

ये बातें सुनकर रावण एक दम क्रोध में आ गया और द्वार के समीप पहुँचा, लेकिन वहाँ पर उसे कोई नहीं दिखाई दिया।

सबक़

कनकदास सीतापुर में रहता था। प्रेमा के साथ उसके विवाह को दस वर्ष बीत गये थे, फिर भी वे अभी सन्तानविहीन थे। दोनों पति-पत्नी ने अनेक जप-तप, व्रत-उपवास किये। अन्ततः उनकी तपस्या सफल हुई और प्रेमा ने गर्भ धारण किया।

कनकदास को अपनी पत्नी से बहुत प्रेम था और वह सदा इस बात का प्रयत्न करता था कि वह प्रसन्न रहे। एक दिन कनकदास को लगा कि प्रेमा उदास है। उसने उसे समझाते हुए कहा, 'प्रेमा, तुम्हें उदास नहीं रहना है। तुम्हारे मन में जो भी इच्छा हो, बताओ, मैं अवश्य ही उसे पूरी करने का प्रयत्न करूँगा।"

"मेरी इच्छा है कि मैं रामपुर के सुनार नागराज के हाथों बने मोतियों के हार को पहनकर घूमूँ।" प्रेमा ने कहा।

नागराज रामपुर का प्रसिद्ध जौहरी था। लोगों का विश्वास था कि उसके हाथों बना हार पहनने से शुभ की प्राप्ति होती है।

कोई और प्रसंग होता तो शायद कनकदास अपनी पत्नी के इस आग्रह पर विशेष ध्यान न देता। पर इस समय वह प्रेमा की हर इच्छा पूरी करना चाहता था। उसने मुस्करा कर कहा, "प्रेमा, मैं स्वयं रामपुर जाऊँगा और तुम्हारे लिए हार बनवा कर ले आऊँगा। तुम सदा प्रसन्न रहो।"

"तुम मुझसे दूर जाओगे तो मेरा मन अधीर रहेगा। तुम किसी और को रामपुर भेज दो!" प्रेमा ने कहा।

कनकदास ने सोचा कि इस काम के लिए वह अपने अत्यन्त घनिष्ट मित्र शंभुदास के पुत्र गणेश को भेज देगा।

गणेश बीस वर्ष का नवजवान था। फर्नीचर बनाने के काम में वह अपने पिता का हाथ बँटाता

था। गणेश को रामपुर देखने की बड़ी इच्छा थी, पर वहाँ उसका कोई सम्बन्धी न था। रामपुर जाने पर उसे सराय में ठहरना पड़ता, साथ ही आने-जाने का खर्च। इन्हीं सब बातों को सोचकर शंभुदास ने कभी गणेश को रामपुर नहीं भेजा था।

कनकदास ने गणेश को अपने घर बुलवा लिया और कहा, "गणेश, तुम एक काम करो! रामपुर जाकर नागराज से मिलो और मोतियों का एक हार बनाने के लिए कहो! जब तक वह हार बनकर तैयार हो, तुम वहीं रहना और उसे अपने साथ लेते आना। रामपुर में मेरे एक निकट रिश्तेदार सिद्धराज हैं, उनके घर तुम्हारे ठहरने की व्यवस्था हो जायेगी। तुम्हारा पूरा यात्रा-खर्च मैं दूँगा।"

चाचा कनकदास की बात सुनकर गणेश को बहुत प्रसन्नता हुई। शंभुदास भी यह सोचकर बहुत खुश हुआ कि इस प्रकार उसके पुत्र का शौक पूरा हो जायेगा।

रामपुर पहुँचने के लिए सीतानगर से कुछ दूर तक बैलगाड़ियों से जाना पड़ता था। वहाँ से किराये की घोड़ा गाड़ियाँ मिल जाती थीं। गणेश यात्रा करके रामपुर पहुँचा। वहाँ उसने सिद्धराज के निवास-स्थान के बारे में पूछताछ की। मकान का पता लगाकर जब वह जा रहा था तो रास्ते में एक जगह पैर फिसल जाने के कारण वह गंदले पानी में गिर पड़ा। कपड़ों पर कीचड़ लग गयी। आखिर किसी तरह गणेश सिद्धराज के घर पहुँचा और उससे अपने आने का कारण बताया।

सिद्धराज बड़े आदर के साथ बोला, "अच्छा, हमारे कनकदास ने तुम्हें हमारे घर भेजा है। तब तो तुम हमारे अतिथि हुए। लाओ, अपने हाथ की यह थैली तुम मुझे दे दो! मैं इसे घर में सुरक्षित रख देता हूँ। तुम पिछवाड़े की तरफ़ जाओ और कुएँ से पानी भर कर आराम से नहा धो लो!"

सिद्धराज का पुत्र विजेंद्र गणेश को कुएँ के पास ले गया और बालटी उसके हाथ में थमा दी। इस बीच सिद्धराज पानी भरने के लिए एक मटका ले आया और गणेश से बोला, "तुम इसमें पानी भरकर नहा लो। नहाने के बाद इस मटके को भर देना!"

गणेश को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये लोग घर आये मेहमान से इस प्रकार कस कर काम लेते हैं। पर उसने सिद्धराज से कुछ न कहा और उसके कहे अनुसार मटके में पानी भर दिया। फिर भी, वह यात्रा के कारण बहुत थका हुआ था— मटका भरने में उसे कष्ट हुआ ।

गणेश ने स्नान करते समय ही अपने कीचड़ लगे कपड़ों को भी धो सुखाया। इन सब कामों को निपटाते हुए उसके मन में यह शंका बराबर बनी हुई थी कि कहीं सिद्धराज उसे कोई नौकर तो नहीं समझ रहा ।

कुछ ही देर में गणेश कपड़े पहनकर तैयार हो गया। सिद्धराज ने उसे खाने के लिए बुला लिया, पर वहाँ भी सबने उसके साथ विचित्र सा व्यावहार किया ।

सिद्धराज के परिवार के सभी लोग पीढ़ों पर बैठ गये । उनके सामने चमचमाते बरतनों में खाना परोसा गया। पर गणेश को पीढ़ा नहीं दिया गया और खाना भी उसे केले के पत्तों पर मिला। सबने गरम-गरम खाना खाया, उसे ठंडा खाना मिला ।

भोजन समाप्त होते ही गणेश को गहरी नींद आगयी। सबने अपने आराम के लिए चारपाइयाँ लगवालीं और गणेश को चटाई दे दी। गणेश उस चटाई पर ही गहरी नींद सो गया ।

दूसरे दिन सुबह सिद्धराज की पत्नी विमला ने गणेश को जगाकर कहा, "बेटा, आज हमारा नौकर नहीं आया है। पिछवाड़े आकर दूध दुह दोगे क्या?"

उस समय तक परिवार के अन्य लोग जागे

भी नहीं थे। गणेश ने पिछवाड़े जाकर भैंस का दूध दुह दिया। इसके बाद विमला ने घर के लिए आवश्यक सारा पानी गणेश से भरवा लिया।

गणेश ने सारे काम चुपचाप कर दिये। इसके बाद उसने जौहरी नागराज की दूकान पर जाने की बात उठायी।

"सुनो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।" सिद्धराज ने कहा।

घर से निकलते समय सिद्धराज के हाथ में एक भारी थैला था। उसने थैला गणेश के हाथ में देकर कहा, "सुनो गणेश, इसके अन्दर कुम्हड़े हैं। रास्ते में हमारे एक दोस्त का घर पड़ता है। वहाँ पहुँचाने हैं।"

कुम्हड़ों का थैला ढोने से गणेश के हाथ थककर शिथिल होगये। कुम्हड़े अपने दोस्त के घर पहुँचाने के बाद सिद्धराज गणेश को नागराज की दूकान में ले गया।

सिद्धराज ने नागराज से मोतियों के हार का सारा विवरण देकर अन्त में कहा, "देखो, नागराज, कनकदास मेरे रिश्तेदार और अत्यन्त आत्मीय हैं। कई वर्ष बाद उनके घर में एक बच्चे का जन्म होनेवाला है। तुम यह हार बड़ी कुशलता से बनाना। दाम भी मुनासिब ही लेना समझें।"

नागराज ने आश्वासन दिया और हार बनवाकर देने के लिए चार दिन का समय माँगा। गणेश सिद्धराज के घर चार दिन रहा। सिद्धराज के परिवार के सदस्यों ने इन चार दिनों में गणेश से सारे काम लिये, पर मुख से कोई ऐसी बात न कही, जिससे उसे लगता कि उसका अपमान किया गया है। वे मन दुखानेवाली कोई बात उससे न कहते और न तो किसी प्रकार का कटु वचन बोलते।

हार बनकर तैयार हो गया। गणेश जब अपने गाँव जाने को तैयार हुआ, तब सिद्धराज के परिवार के सब लोग बड़े प्यार से एक स्वर में उससे बोले, "देखो, गणेश, जब भी तुम रामपुर आओ, तुम्हें हमारे ही घर में ठहरना होगा।"

गणेश ने सीतानगर पहुँचकर मोतियों का वह हार कनकदास को सौंप दिया। कनकदास बहुत प्रसन्न हुआ और गणेश से यात्रा के बारे में पूछताछ करने लगा।

गणेश ने सारी बातें बताने में पहले तो संकोच

किया, फिर विस्तारपूर्वक सारी बातें कनकदास को बता दीं। वह बोला, "चाचा, वैसे सिद्धराज के परिवार के लोग अच्छे हैं, लेकिन मेहमानों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए, यह बात शायद वे नहीं जानते।"

सारी बातें सुनकर कनकदास क्रोध में भर गया। फिर बोला, "बेटा गणेश, ऐसी बात नहीं है कि वे लोग अतिथि-सत्कार करने का तरीक़ा नहीं जानते। उन्होंने तुम्हारे साथ जानबूझकर ऐसा व्यवहार किया है। तुम्हें चार दिन खाना खिलाकर उससे दुगुना तुमसे वसूल किया है।"

"नहीं, चाचा, मुझे तो लगता है कि वे साधारण शिष्टाचार से परिचित नहीं हैं। मुझे उन पर एक बार भी गुस्सा नहीं आया, क्योंकि वे मुझे बहुत भले लगे। उन लोगों ने जानबूझकर ऐसा नहीं किया। मेरे साथ ऐसा व्यवहार करने का आख़िर कोई कारण भी तो होना चाहिए!" गणेश ने बड़े आत्मविश्वास से कहा।

"कारण तो है ही! असल में, तुम वास्तविक बात नहीं जानते, इसीलिए उन लोगों के व्यवहार में औचित्य ढूँढ रहे हो। छह महीने पहले उन लोगों ने मेरे घर में एक आदमी को भेजा था। उसके साथ जैसा व्यवहार हमने किया था, ठीक वैसा ही व्यवहार तुम्हारे साथ उन लोगों ने किया है। इसका मतलब यही हुआ न. कि उन लोगों ने जानबूझकर तुम्हारे साथ ऐसा किया है।" कनकदास ने कहा।

अब सारी बात गणेश की समझ में आगयी। कनकदास को सबक़ सिखाने के लिए ही उन लोगों ने उसके साथ ऐसा रूखा व्यवहार किया। गणेश को कनकदास का क्रोध ज़रा भी उचित नहीं लगा। "इन्हें तो अपनी करनी पर पश्चाताप करना चाहिए था" गणेश ने सोचा, "और उलटे ये सिद्धराज पर नाराज़ हैं। ये भी कैसे विचित्र आदमी हैं। शायद ये महाशय नहीं जानते जैसा बोले हैं वही काटते हैं।"

गणेश ने एक शिक्षा ली कि अगर आगे वह रामपुर गया तो अपने ही काम से जायेगा और स्वतंत्रतापूर्वक जायेगा, कनकदास पर निर्भर होकर नहीं जायेगा।
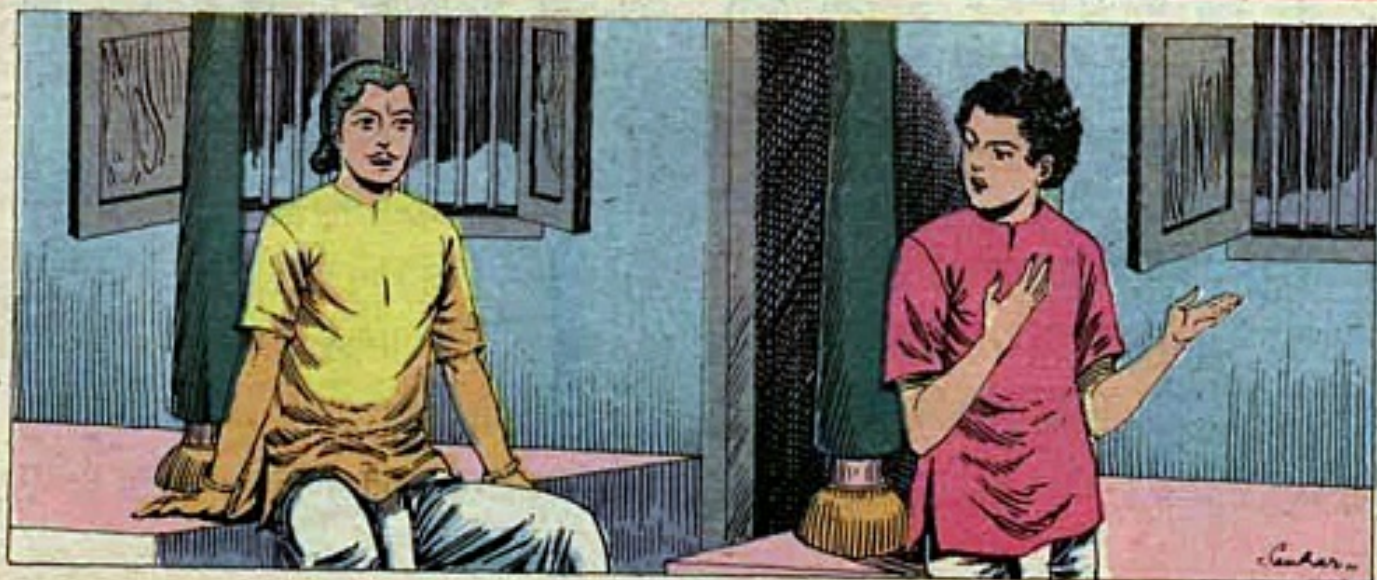
चतुर जुलाहा

महाराजा राजसिंह का दरबार लगा हुआ था और महाराजा सिंहासन पर विराजमान थे। तभी पड़ोसी राजा उदयभानु का एक दूत दरबार में आया और राजा के सिंहासन के चारों तरफ़ एक वृत्त बनाकर चुपचाप खड़ा रह गया।

महाराजा राजासिंह ने अपने मंत्रियों से पूछा, "आप लोग बतायें, इसका क्या अर्थ है?"

मंत्री कोई उत्तर न दे सके। वे स्वयं आश्चर्यचकित थे। महाराजा राजासिंह ने कुछ कुपित होकर आदेश दिया, "जाइये, इसका अर्थ समझाने वाले चतुर व्यक्ति को बुलाकर लाइये!"

सारे मंत्री घबराकर राज्य के चारों तरफ़ निकल पड़े। वे सभी स्थानों में घूमकर चतुर आदमी की खोज करने लगे। आखिर में, कुछ मंत्री एक मकान के पास पहुँचे। उस मकान के अन्दर एक कमरे में एक झूला स्वयं झूल रहा था। छत पर धान सुखाया गया था। पक्षी उसे खाने की ताक में थे। पर ऊपर पंखा चल रहा था इसलिए पक्षी धान के समीप नहीं पहुँच पारहे थे।

इसके बाद मंत्रिगण एक और कमरे में पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक जुलाहे को देखा जो करघे पर कपड़ा बुन रहा था। मंत्रियों ने पूछा, "अरे भाई, हमें बताओ! इस मकान में ये कैसे आश्चर्य देखने में आरहे हैं? झूला अपने आप झूल रहा है। पंखा स्वयं चल रहा है। सो कैसे?"

"इन्हें मैं ही चला रहा हूँ। करघे के साथ झूले के लिए एक डोरी और पंखे के लिए एक और डोरी बंधी हुई है।" जुलाहे ने जवाब दिया।

"वाह, यह तो बड़ा अद्भुत है! हम तुम जैसे एक चतुर आदमी को ही ढूंढ रहे थे। हमारे सामने एक समस्या आगयी है। क्या तुम उसे हल कर सकते हो?" मंत्रियों ने पूछा।

"बताइये, समस्या क्या है?" जुलाहे ने पूछा।

मंत्रियों ने राजसभा की घटना कह सुनायी।

जुलाहा बोला, "यह समस्या तो तभी हल होगी, जब मैं स्वयं राजसभा में उपस्थित होऊँगा

२५ वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित कहानी

।" यह कहकर उसने दो गोलियाँ अपने हाथ में लीं और मंत्रियों के साथ चल पड़ा।

राजसभा में पहुँचकर रामदीन जुलाहे ने राजा को प्रणाम किया। इसके बाद उसने उस घेरे की तरफ़ दृष्टि दौड़ायी जो दूत ने राजसिंहासन के चारों तरफ़ बांधा था। तब उसने दूत की तरफ़ दृष्टि डालकर उसके सामने गोलियाँ फेंक दीं।

दूसरे ही क्षण दूत ने मुट्ठी भर ज्वार अपनी जेब से निकाल कर फर्श पर छितरा दी।

यह देखकर रामदीन जुलाहा धीमे से हँसा और राजसभा से बाहर चला गया। कुछ ही क्षण बाद वह हाथ में एक मुर्गे को पकड़ कर अन्दर आया और उसे ज्वार के दानों पर छोड़ दिया।

मुर्गे ने सारी ज्वार चुग ली। यह देख दूत तुरन्त ही वहाँ से चला गया।

महाराजा राजासिंह ने पूछा, "यह सब क्या है? मैं तो कुछ भी नहीं समझ सका।"

"महाराजाधिराज, बात इतनी ही है कि पड़ोसी राजा उदयभानु ने हमारे पास यह सन्देश भेजा है कि वे हमारे राज्य को घेरनेवाले हैं। राजा का दूत आपके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था। वह यह जानना चाहता था कि हम अपनी पराजय स्वीकार कर रहे हैं या युद्ध करना चाहते हैं। मैंने उन गोलियों के द्वारा उसे यह जवाब दिया कि 'तुम तो गोलियाँ खेलनेवाले बच्चे हो!' इसके उत्तर में उसने मुट्ठी भर ज्वार के दाने फेंककर यह बताया, 'हमारे पास भारी सेना है'। मैंने उन दानों पर मुर्गा छोड़कर उस दूत को यह जवाब दिया कि 'जिस तरह इस मुर्गे ने ज्वार का एक भी दाना नहीं छोड़ा, वैसे ही हम भी तुम्हारी सेना के एक भी सैनिक को जीवित न छोड़ेंगे'। यह सन्देशा लेकर दूत यहाँ से चला गया है।" जुलाहे ने कहा।

"शाबाश! तुम तो बड़े ही बुद्धिमान और विलक्षण आदमी हो। तुम यहीं रह जाओ! मैं तुम्हें अपना प्रधानमंत्री बनाऊँगा।" राजा ने कहा

"वाह, यह तो आपने खूब कही, महाराज! मेरा तो काफ़ी काम पड़ा हुआ है।" यह कहकर जुलाहा रामदीन राजसभा से बाहर निकल गया।

कंजूस का तीर्थाटन

सेठ गोविन्द नारायण अव्वल दर्जे का कंजूस था। यद्यपि उसके पास काफ़ी धन था, फिर भी, वह एक फूटी कौड़ी भी खर्च नहीं करना चाहता था। बिना एक पैसा लगाये ही वह तीर्थाटन करना चाहता था। इसके लिए उसने एक योजना बनायी। उसने अपने को गूँगा-बहरा बताने के लिए टीन पर लिखी एक तख़्ती सी गले में लटका ली और लंगड़ाता हुआ चल पड़ा।

भीख का आश्रय लेकर गोविन्द नारायण एक तीर्थस्थान पर जा पहुँचा। वह वहाँ भीख माँग रहा था कि उसके गाँव के ही दो जन राधेश्याम और कृष्णशर्मा उधर से निकले।

गोविन्दनारायण को इस रूप में देखकर राधेश्याम ने कृष्णशर्मा से कहा, "इस बेचारे गोविन्दनारायण को यह पता नहीं है कि हमारा गाँव बाढ़ में डूब गया है। यह ख़बर अगर हम इसे बताना भी चाहें तो भी बहरा हो जाने के कारण यह सुन नहीं पायेगा। क्या करें?"

यह ख़बर सुनकर गोविन्दनारायण चौंक पड़ा। वह यह बात भूल गया कि लोगों के बीच वह गूंगा-बहरा बनकर स्वांग रच रहा है। वह तुरन्त बोल उठा, "क्या कहा? हमारा गाँव बाढ़ में डूब गया है? इसका मतलब है कि मेरा आलीशान मकान और एक हज़ार मन धान भी बाढ़ का ग्रास बन गये हैं?"

गोविन्दनारायण को अंधा, गूंगा-बहरा एवं लंगड़ा समझकर भीख देनेवाले लोगों ने उसकी बातें सुनकर कहा, "अरे दुष्ट, तुम लोगों को धोखा देते हो?" यह कहकर उसे खूब पीटा।

गोविन्दनारायण को पिटता देखकर राधेश्याम ज़ोर से हँस पड़ा और दूर चला गया। अब गोविन्दनारायण को समझ में आया कि उसे सबक़ सिखाने के लिए ही राधेश्याम ने यह बात कही थी। उसका तीर्थाटन इस तरह समाप्त हुआ।
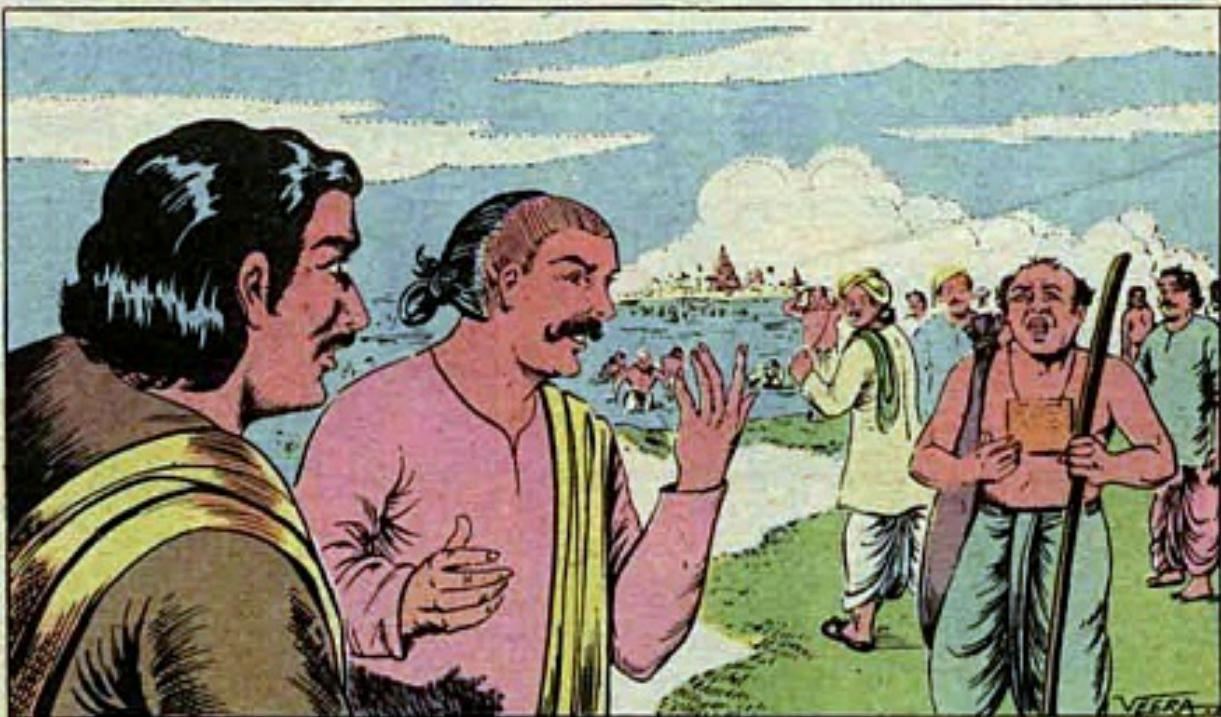
शहदवाला तीतर

अफ्रीका के पहाड़ी प्रदेश के एक जंगल में दो भाई रहा करते थे। बड़े भाई का नाम था कातो और छोटे का न्यामो। ये दोनों बन में शिकार खेलकर अपने परिवार के लिए आवश्यक आहार जुटाते थे।

एक दिन कातो और न्यामो अपने-कंधे पर चमड़े का थैला लटकाकर और अपने हाथ में धनुष-बाण लेकर शिकार खेलने चल पड़े। बन में कुछ दूर तक वे एक विशिष्ट मार्ग से चले, फिर एक ऐसे घने जंगल में पहुँचे, जहाँ पगडंडी तक न थी।

कुछ आगे बढ़ने पर दोनों भाइयों ने देखा कि एक स्थान पर मिट्टी के कुछ बरतन क़तार में औंधे मुँह रखे हैं।

छोटे न्यामो ने बड़े भाई कातो से पूछा, "भैया, ये बरतन कैसे हैं? इस निर्जन प्रदेश में किसने इन बरतनों को रखा होगा?"

"न्यामो, उन्हें मत छूना। इन बरतनों के अन्दर शायद मंत्र-तंत्र या जादू-टोना किया गया हो! हमें मुसीबत में नहीं फँसना चाहिए।" कातो ने कहा। पर छोटा न्यामो अत्यन्त साहसी था। उसने हठपूर्वक कहा, "भैया, इन बरतनों के नीचे क्या है, हमें अवश्य देखना चाहिए।"

इसके बाद न्यामो एक-एक बरतन को सीधा करके रखने लगा। कातो डरकर दूर खड़ा हो गया और छोटे भाई के इस कार्य को आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा।

छोटे भाई न्यामो ने कई बरतन उठाकर सीधे रख दिये, पर उन बरतनों के नीचे कुछ न निकला। जब उसने आख़िरी बरतन उठाकर उसे सीधा किया, तब उसके नीचे से एक बूढ़ी औरत झट से बाहर आगयी।

उस बूढ़ी औरत ने बरतन की क़ैद से रिहा करनेवाले न्यामो की तरफ़ देखा तक नहीं और दूर खड़े कातो से बोली, "तुम भड़के हुए भैंसे की तरह दूर खड़े काँप क्यों रहे हो? मैं तुम्हारी कोई

अफ्रीका की लोक कथा

हानि नहीं करूँगी। तुम मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें अच्छा तमाशा दिखाऊँगी।"

कातो ने कोई जवाब नहीं दिया और जड़वत वैसे ही खड़ा रहा।

"अरे कायर! डरपोक!" ऐसी कुछ गालियाँ देकर वह बूढ़ी न्यामो की तरफ़ मुड़ गयी और उससे अपने साथ चलने को कहा। न्यामो सभी मुसीबतों का सामना करने के लिए तैयार होकर उस बूढ़ी के पीछे चल पड़ा।

वह बूढ़ी और न्यामो कुछ दूर आगे बढ़े, तब बूढ़ी ने रुककर न्यामो के हाथ में एक कुल्हाड़ी थमा दी और फिर एक पेड़ की तरफ़ संकेत करके बोली, "तुम मेरे लिए यह पेड़ काट दो!"

न्यामो ने कुल्हाड़ी से पेड़ पर एक वार किया। तत्क्षण पेड़ से एक गाय कूद पड़ी। न्यामो ने पेड़ काटने के लिए जितने वार किये, हर बार कोई पशु-गाय, भेड़, बकरी पेड़ से बाहर निकलते रहे। शीघ्र ही उसके चारों तरफ़ पशुओं का एक झुंड खड़ा हो गया।

"सुनो बेटे, ये सब पशु तुम्हारे हैं। तुम इन्हें हाँककर अपने घर ले जाओ! मैं तो यहीं रहूँगी।" बूढ़ी बोली।

न्यामो ने बूढ़ी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और उस झुंड को हाँककर कातो के पास ले गया। फिर बोला, "देखो, भैया, उस बूढ़ी माई ने मुझे क्या-क्या दिया है! उसने जब तुम्हें बुलाया, तुम उसके साथ नहीं गये!" न्यामो ने कातो को इन पशुओं को प्राप्त करने का पूरा किस्सा कह सुनाया। कातो सुनकर चुप रह गया।

दोनों भाइयों ने गाय, भेड़, बकरी आदि के उस झुंड को गाँव की तरफ़ हाँक दिया और पीछे-पीछे चलने लगे।

गरमी का मौसम था। दोनों भाई प्यास के कारण परेशान थे। पशु भी भूख-प्यास के कारण चिल्ला रहे थे।

थोड़ी दूर जाने के बाद न्यामो ने चिल्लाकर कहा, "देखो, वहाँ पानी है।"

जिस रास्ते से ये दोनों भाई जा रहे थे, उसकी बग़ल में एक गहरी ख़ाई थी, जिसमें पेड़ों के बीच कलकल ध्वनि करता एक नाला बह रहा था। पर उस नाले तक पहुँचने के लिए कोई रास्ता न था। वहाँ पर पहाड़ एकदम सीध में खडा था।

“न्यामो, तू मुझे रस्सी के सहारे नीचे उतार दे! मैं अपनी प्यास बुझाकर ऊपर आ जाता हूँ।” कातो नें कहा।

न्यामो ने ऐसा ही किया। कातो ख़ाई में उतरा और पानी पीकर इतमीनान से ऊपर आ गया।

“भैया, अब तुम मुझे नीचे उतार दो। मैं भी पानी पीकर ऊपर आ जाता हूँ।” न्यामो ने कहा।

कातो ने रस्सी थामकर न्यामो को खाई में उतार दिया। पर पशुओं के इस झुंड को देखकर उसके अन्दर लोभ आ गया और उसने अपनी कुबुद्धि से प्रेरित होकर हाथ की रस्सी को ख़ाई में ही फेंक दिया। उस ख़ाई में अपने छोटे भाई को मरने के लिए छोड़कर कातो पशुओं को घर हाँक ले गया और अपने माता-पिता से बोला, “मुझे एक बूढ़ी माई ने ये सारे पशु दिये हैं।”

“अरे वाह! पर न्यामो कहाँ है?” माता पिता ने पुछा।

“क्या वह अभी तक घर नहीं पहुँचा? वह तो दोपहर को ही घर के लिए चल पड़ा था। उसके बाद मैंने तो उसे देखा नहीं।” कातो ने जवाब दिया।

उस रात भी न्यामो घर नहीं लौटा। माता-पिता ने सोचा, हो सकता है, न्यामो किसी बड़े शिकार की खोज में कहीं दूर निकल गया हो! उन्हें न्यामो की बहादुरी में विश्वास था, इसलिए वे निश्चिंत होकर सो गये।

दूसरे दिन गाँव की औरतें पानी लेने गयीं तो

उन्हें तीतर की आवाज़ सुनाई दी। उस प्रदेश का यह रिवाज़ था कि अगर लोगों को तीतर की कूक सुनाई दे तो वे उसका पीछा करते हैं, क्योंकि तीतर उड़-उड़कर शहद के छत्तों के पास पहुँचता है और इस प्रकार उन्हें शहद के छत्ते प्राप्त हो जाते हैं।

जब पनिहारिन औरतों ने घर पहँच कर अपन मर्दों को यह सूचना दी, “जल्दी चलो, शहदवाला तीतर कूक रहा है” तो यह ख़बर कातो-न्यामो के पिता के कान में भी पड़ी। वह और गाँव के कुछ और लोग अपने-अपने घरों से निकल कर शहद के तीतर के पीछे-दौड़ पड़े। वह पक्षी उन्हें दूर ले गया। शहद के तीतर की कूक शहद के छत्तों के समीप ही सुनाई देती है, पर वह

पक्षी तो दूर उड़ता चला गया। वह कहीं रुका ही नहीं। कुछ लोग तो निराश होकर वापस ही लौट गये, पर कुछ लोग उस पक्षी का पीछा करते रहे। पीछा करनेवाले इन लोगों में इन दोनों भाइयों का पिता भी था।

शहदवाला तीतर अन्त में खाई के अन्दर उड़ान भरने लगा। खाई में अगर शहद का छत्ता होता भी, तो भी वहाँ से शहद निकालना संभव नहीं था। इसलिए तीतर के पीछे दौड़कर आये उन लोगों को बड़ी निराशा हुई।

कातो-न्यामो के पिता ने खाई के भीतर झाँककर देखा। उसे न तो शहद का छत्ता दिखाई दिया और न वह तीतर पक्षी, पर उसे वहाँ किसी मनुष्य की धुंधली-सी आकृति दिखाई दी और अस्पष्ट-सा स्वर भी सुनाई दिया। उस स्वर को पहचान कर वह चिल्ला उठा, "अरे, यह तो मेरा बेटा न्यामो है। खाई में गिर गया है।"

इसके बाद सब लोग न्यामो को निकालने में लग गये। ख़ाई के भीतर एक रस्सी फेंक दी गयी। न्यामो ने उस रस्सी को पकड़ लिया। सबने उसे बाहर खींच लिया।

न्यामो के मुँह से सारी कहानी सुनकर उसका पिता बिलख-बिलखकर रो पड़ा, बोला, "बेटा, मैंने कभी नहीं सोचा था कि मेरा अपना बेटा कातो ऐसा नीच कार्य कर सकता है? अपने छोटे भाई को कोई इस तरह दग़ा के सकता है? शहद के तीतर की कृपा से तुम बच गये, वरना तुम्हारी क्या दशा होती?"

बाक़ी लोगों ने चिल्ला कर कहा, "चलो, हम कातो की पिटाई करेंगे, ताकि उसकी अक़्ल ठिकाने लग जाये।"

कातो को यह ख़बर पहले ही मिल गयी कि न्यामो को खाई से बाहर निकाल लिया गया है। अब उसका पिता, न्यामो और गाँव के अन्य लोग उसकी वास्तविकता को जान गये थे। उनके सामने पड़ने की ग्लानि से बचने के लिए वह घर से भाग गया। इसके बाद फिर कहीं उसका पता न चला।

पेंग्विन के अंडे

किंग पेंग्विन पक्षी अपने पैरों के नीचे की थैली जैसी तह में अपने एक ही अंडे को सेंता है। इस पक्षी की यह विशेषता है कि यह चारों तरफ़ —40° सें० तापमान का संयोजन करता है। इसका अर्थ है कि यह पक्षी तापमान में 80° सें० का अन्तर पैदा करता है

भ्रम

लोग समझते हैं कि बिच्छू अगर लपटों के बीच फँस जाये तो वह अपने ही डंक मारकर आत्महत्या कर लेता है। पर यह बात सच नहीं है। सभी ज़हरीले जानवरों की तरह बिच्छू का ज़हर भी उसके अपने शरीर को कोई हानि नहीं पहुँचाता है।

भूरे भालू का आहार

भूरा भालू अपने आहार के लिए सत्तर प्रतिशत तक पौधों पर ही निर्भर करता है। इसके अलावा वह छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े, चूहे, पक्षी, गिलहरी तथा हिरनों के बच्चे—इन सबको भी पकड़कर खा लेता है।

मनोरंजक एवं ज्ञानवर्द्धक उत्कृष्ट मासिक पत्र

* चन्दामामा हमारे पुराण व साहित्य के श्रेष्ठ रत्नों को क्रमबद्ध रूप में प्रदान करता है ।
* व्यापक दृष्टिकोण को लेकर विश्व साहित्य की अद्भुत काव्य कथाओं को सरल भाषा में प्रस्तुत करता है ।
* मृदुहास्य, ज्ञानवर्द्धक तथा मनोरंजक सुन्दर कहानियों द्वारा पाठकों को आकृष्ट करता है ।
* हमारी पुराण गाथाओं को प्रामाणिक रूप में परिचय करता है ।
* हास्यपूर्ण प्रसंगों तथा व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने वाले शीर्षकों के साथ पाठकों का उत्साह वर्द्धन करता है ।
* चन्दामामा केवल आपके जीवन में ही नहीं बल्कि आपके बन्धु एवं मित्रों के जीवन में भी रचनात्मक पात्र का व्यवहार करता है । इसलिए आप अपने घनिष्ट मित्रों को चन्दामामा भेंट कीजिए ! उपहार में दीजिए !

बच्चों के लिए प्रस्तुत चन्दामामा, पाठकों में नवयौवन का उत्साह एवं आनन्द प्रदान करता है ।

तेरह भाषाओं में प्रकाशित चन्दामामा का साप किसी भी भाषा का ग्राहक बन सकते हैं !

तेलुगु, तमिल, हिन्दी, अंग्रेज़ी, असामी, बंगाली, गुजराती, कन्नड, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी और संस्कृत ।

वार्षिक चन्दा: रु. ३०-००

आप किस भाषा का चन्दामामा चाहते हैं, इसका उल्लेख करते हुए निम्न लिखित पते पर अपना चन्दा भेजिए:

डाल्टन एजेन्सीस

चन्दामामा बिल्डिंग्स,

वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६.

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां मार्च १९८७ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

Anant Desai

Anant Desai

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियां एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ जनवरी १० तक परिचयोक्तियां प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियां केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

नवम्बर के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो: रुक गई रेल!

द्वितीय फोटो: नाव की ढकेल!!

प्रेषक: अखिलेश श्रीवास्तव, ६७/१२ डी. एल. रोड, देहरादून - २४८ ००१ (उ.प्र.)

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा: रु. ३०-००

चन्दा भेजने का पता:

डॉल्टन एजेन्सीस, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास - ६०० ०२६

अन्य देशों के चन्दे सम्बन्धी विवरण के लिए निम्न पते पर लिखिये:

चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास - ६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

ज़िंदगी में मौजमस्ती की उमंग अभी शुरू ही हुई थी कि मुँहासे निकले और सारा मज़ा किरकिरा कर गए

साल में एक दिन तो ऐसा आता है जब हमें भी अपनी कलाकारी दिखाने का अवसर मिलता है. वह दिन आ गया था, मेरे स्कूल के सालाना जलसे का दिन. इसमें टेलेन्ट कान्टेस्ट के लिए मैं अपने गाने की खूब रिहर्सल कर रही थी. सब कुछ ठीकठाक चल रहा था कि तभी अचानक मैंने देखा, मेरे चेहरे पर मुंहासे निकल रहे हैं. ये क्या? मुंहासे और इस वक्त? नहीं, नहीं. ज़िंदगी में मौजमस्ती की उंमग अभी शुरू होने को है और ... चेहरे पर मुंहासे लिए मैं स्टेज पर तो कभी नहीं जा सकती.

तभी मेरी सहेली आ पहुंची. उसने मुझे बताया, "फ़िकर करने की कोई बात नहीं. बस क्लिअरेसिल लगाओ. मैंने भी इसे इस्तेमाल किया है. तुम्हें मालूम है क्लिअरेसिल कील-मुंहासे साफ़ करती है और उन्हें फैलने से भी रोकती है." मैंने क्लिअरेसिल लगाई और यक़ीन मानिए, इसने अपना असर दिखाया. मेरे इनाम लेते वक्त तो तालियों की गड़गड़ाहट से हाल गूंज उठा और मैंने मन ही मन क्लिअरेसिल को धन्यवाद दिया, जिसकी मेहरबानी से ज़िंदगी का ये खूबसूरत अवसर मेरे हाथ लगा.

क्लिअरेसिल ३ तरफ़ा असर दिखाती है :

१. कील-मुंहासों को खोलती है
इसकी विशेष औषधि प्रभावित कील-मुंहासों का मुंह खोलने में मदद करती है.

२. बैक्टीरिया से मुकाबला करती है
इसकी बैक्टीरिया-विरोधी क्रिया बैक्टीरिया से मुकाबला करती है, जिनसे मुंहासे निकल और फैल सकते हैं.

३. कील-मुंहासे सुखा देती है
अधिक तेल सोखकर कील-मुंहासे सुखा देने में मदद करती है.

Clearasil NEW IMPROVED

OBM/7991 HN

क्लिअरेसिल कील-मुंहासों का स्पेशलिस्ट, जो सचमुच असरदार है.

CHANDAMAMA (Hindi) FEBRUARY 1987 Regd. No. M. 5452